कुँवर नारायण की कविताओं का अभिव्यक्ति पक्ष

5.1 कुँवर नारायण के भाषा-संबंधी विचार

कुँवर नारायण की कविताओं का कथ्य पक्ष जितना महत्वपूर्ण है, अभिव्यक्ति पक्ष भी उतना ही महत्वपूर्ण है। उनकी कविताओं में भाव और भाषा को अलगाकर नहीं देखा जा सकता है क्योंकि यहाँ भाषा में ज़रा-सा बदलाव करने पर कविता अपना मर्म खो देती है। साधारण अर्थ की अभिव्यक्ति करने वाला शब्द भी उनकी कविता की संरचना की वजह से विशेष अर्थ देता है। इसलिए कवि की भाषा-संबंधी दृष्टिकोण को समझे बिना उनकी कविताओं में निहित मूल्य-बोध एवं जीवन-दृष्टि को ठीक-ठीक नहीं समझा जा सकता है। कुँवर जी कवि के लिए जितना महत्वपूर्ण 'जीवन-दर्शन' को मानते हैं उतना ही महत्वपूर्ण 'भाषा-दर्शन' को भी मानते हैं। 'शब्द और देशकाल' में कवि के संदर्भ में वे लिखते हैं-"एक कवि की हैसियत से मेरे लिए यह बात ख़ास महत्त्व रखती है कि अपनी कविताओं में एक कवि केवल मौजूदा यथार्थ को ही नहीं एक विस्तृत और समग्र भाषा-बोध को भी जीता है। उसका भाषा-दर्शन भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना उसका जीवन-दर्शन।"[1]कुँवर नारायण की कविताओं, भेंटवार्ताओं, लेखों आदि के माध्यम से भाषा-संबंधी उनके विचारों को जाना जा सकता है। ये विचार सूत्र की तरह हैं जिसके मार्फ़त कवि की रचना-प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया जा सकता है। कविता के शिल्प के संदर्भ में कवि के विचारों को इस अध्याय में विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

कुँवर जी के लिए 'शब्द'केवल एक माध्यम मात्र नहीं है, जिससे कविता की निर्मिति हो बल्कि कविता को अस्तित्व में लाने वाली एक महत्वपूर्ण इकाई है 'शब्द'। प्रत्येक शब्द का अपना एक इतिहास होता है और विभिन्न सन्दर्भों से होता हुआ वह किसी कविता तक पहुँचता है और कविता में सिर्फ़ उसका अर्थ महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि वे विभिन्न संदर्भ भी महत्वपूर्ण होते हैं जो उस शब्द की यात्रा के साक्षी हैं। बकौल कुँवर नारायण "शब्दों के अर्थ होते हैं, लेकिन

इससे भी कहीं अधिक महत्वपूर्ण उनकी संस्कृति और इतिहास होता है। शब्दों की एक तात्कालिकता होती है, लेकिन उससे कहीं अधिक अर्थपूर्ण उनका एक व्यक्तित्व होता है, जिसे कविता में जीवन्त कर, सदियों लम्बी उनकी उन अनुभव-यात्राओं के बारे में जाना जा सकता है, जिनसे गुज़र कर वे वर्तमान अर्थ-संदर्भ तक पहुँचे हैं।"[2]

कुँवर जी सिर्फ़ कवि नहीं हैं, वे एक चिंतक भी हैं। एक ऐसा चिंतक जिनके चिंतन का दायरा बहुत विस्तृत है। साहित्य, दर्शन, संगीत, सिनेमा, संस्कृति, अध्यात्म हर उस क्षेत्र पर कुँवर जी विचार करते हैं जिसका संबंध मनुष्य के जीवन से है। 'आत्मजयी' और 'कुमारजीव' जैसा प्रबंध-काव्य उनके इसी विस्तृत चिंतन का गवाह है।अपनी पुस्तक 'शब्द और देशकाल' के पूर्वकथन में अपने लिखने की प्रक्रिया के विषय में कुँवर जी का मत है कि "लिखने का अर्थ मेरे लिए शब्दों और भाषा, को लिखने के लिए यांत्रिक ढंग से बरतना मात्र नहीं है। उनके साथ एक अंतरंग संवाद और साहचर्य भी है।"[3]

अब सवाल उठता है कि शब्दों को यांत्रिक ढंग से बरतने और उसके साथ अंतरंग संवाद या जीवन्त बातचीत करने में क्या अंतर है? 'शब्द' का एक प्रयोग वह भी है जो गणित के किसी सवाल को बताने के लिए या अर्थशास्त्र के किसी पाठ की व्याख्या के लिए या किसी व्यावसायिक लेन-देन के लिए किया जाता है, और एक प्रयोग वह भी है जिसे हम साहित्य की विभिन्न विधाओं में लेखन में करते हैं। 'शब्द' एक से होने की स्थिति में भी संदर्भ के अनुसार उनके अर्थ भिन्न हो जाते हैं। 'कविता' में तो यह प्रयोग सर्वथा भिन्न होता है। दैनिक जीवन के संवाद में हम भाषा का जिस रूप में प्रयोग करते हैं वह अधिकांशतः एकरुखी होता है क्योंकि उसका उद्देश्य सिर्फ़ अपने कहे को सामने वाले तक पहुँचाना होता है परन्तु साहित्य में 'शिल्प' केवल माध्यम नहीं है बल्कि रचना का अभिन्न हिस्सा है इसलिए किसी कविता या अन्य विधा

में एक अर्थ वाले दो शब्दों के प्रयोग से संदर्भ बदल जाते हैं। कुँवर नारायण इस विषय में लिखते हैं-

"साहित्य केवल एकरुखी भाषा नहीं, वह भाषा की उस सामर्थ्य और शक्ति का अहसास है भी और पाठक को कराता भी है जो साहित्य को मनुष्य की अन्य भाषाई चेष्टाओं से अलग भी करता है और विशिष्ट भी-क्योंकि वह मूलतः भाषा की एक विशिष्ट रचना है, भाषा में एक रचना नहीं।"[4]

जब कवि साहित्य को 'भाषा की एक विशिष्ट रचना' बतला रहे हैं तो इसका अर्थ है कि सिर्फ़ भाषा ही साहित्य को नहीं रचती है, साहित्य भी भाषा को रचता है। और, जब साहित्य भाषा को रचता है तो उसका प्रभाव सिर्फ़ रचना विशेष तक नहीं रहता उसके प्रभाव में जीवन का हर क्षेत्र आता है क्योंकि भाषा की ज़रुरत तो जीवन के हर क्षेत्र में है। इसका दूसरा पक्ष यह भी है कि हमारे दैनिक जीवन में जो भाषा का उथलापन आ रहा है उसकी एक महत्वपूर्ण वजह साहित्य के प्रति कम होता हमारा अनुराग है। हमने जिन क्षेत्रों को जीवन में प्राथमिकता दी है संभवतः वह भाषा-प्रयोग के प्रति इतना सचेत नहीं है। कुँवर नारायण इस विश्वास के पक्षधर हैं कि साहित्य रचना का एक महत्वपूर्ण लक्ष्य भाषा के शक्ति-स्रोत का निरन्तर उत्खनन है- "जीवन में साहित्य की जगह को मैंने अपने लिए कुछ इस तरह भी समझा है। वह एक बहुत बड़ी भाषाई ताक़त का स्रोत है। जिस तरह हर शब्द की एक स्वतंत्र सत्ता होती है उसी तरह भाषा में गठित उसकी एक समवेत शक्ति भी। रचना-कर्म का एक ख़ास मतलब इस निहित शक्ति-स्रोत का निरन्तर उत्खनन और आविष्कार है।"[5]

क्या वजह है कि जो कार्य कविता कर जाती है (भाषाई शक्ति-स्रोत के उत्खनन का कार्य) वह वे स्थूल यंत्र नहीं कर पाते जिनसे आज के मनुष्य ने अपनी ज़िन्दगी को भर लिया है। भौतिकता के चाहे कितने ही साधन हम जुटा लें वो हमारी इन्द्रियों को तो संतुष्ट कर सकते हैं लेकिन हमारी भाषाई चेष्टा को गतिशील नहीं कर सकते। जब हम इसकी वजहों की पड़ताल

करना चाहते हैं तो हमें दोनों के सरोकारों में उसे तलाशना पड़ता है। भौतिक-साधनों का सरोकार जीवन के सुखों से तो है परन्तु जीवन की सार्थकता से नहीं, जबकि कविता जीवन की सार्थकता से जुड़ने में ही सफ़ल मानी जाती है। अब ऐसे में कविता का दायित्व बढ़ जाता है क्योंकि उसके सामने चुनौती सिर्फ़ 'भाषा के शक्ति-स्रोतों के निरन्तर उत्खनन' का नहीं है बल्कि कविता के समक्ष उन जीवन-स्रोतों को भी खोजने की चुनौती है जो भौतिक-साधनों की भीड़ में खो गये हैं। कुँवर नारायण कविता की इस जवाबदेही की तरफ़ इशारा करते हुए कहते हैं- "कविता को भाषा में वहाँ अपनी पक्की और स्थायी पहचान बनाना है जहाँ आदमी के बनाए किसी भी स्थूल उपकरण की पहुँच नहीं। बदलते सन्दर्भों में मनुष्य के सबसे कम उद्घाटित या विलुप्त होते, जीवन-स्रोतों की खोज और भाषा में उनका संरक्षण शायद आज भी कविता की सबसे बड़ी ताक़त है।"[6]

आज के समय में जीवन-स्रोतों को भाषा में संरक्षित करना एक दुष्कर कार्य हो गया है। इसकी वजह है हमारे समय की भयावहता। आज का मनुष्य लोभ और डर के बीच पेंडुलम की तरह डोल रहा है। वह यह नहीं जानता की बाज़ार में वस्तुओं की ख़रीद-फ़रोख्त करते-करते वह ख़ुद वस्तु में तब्दील होता जा रहा है और उसके मूल्य का निर्धारक बाज़ार बनता जा रहा है। मानवीय-चेष्टाएँ अगर मनुष्य के लिए ही अप्रासंगिक हो जाएँ तो इसे चिंता का विषय होना चाहिए। वस्तुओं और मानवीय-संबंधों के फ़र्क को पाट देना हमारे समय की सबसे बड़ी त्रासदी है। इस त्रासदी के विषय में 'समकालीन हिंदी आलोचना की चुनौतियाँ' शीर्षक लेख में अरुण होता लिखते हैं "हमारा समय भयावह है। एक ओर भय है तो दूसरी ओर प्रलोभन। एक ओर पराधीनता है तो दूसरी ओर सम्मोहन। रचना का ही नहीं मनुष्य जाति तक का व्यवसायीकरण होने लगा है। संस्कृति के इतिहास में इससे बड़ी दुर्घटना और क्या हो सकती है? साहित्य, संस्कृति, मानवीय संबंध सभी प्रॉडक्टबनकर रह जाएँ।"[7]

कुँवर नारायण जब भाषा के संदर्भ में विचार करते हैं तो उनका ध्यान मनुष्य की वृत्ति पर जाता है। जब मनुष्य जीवन में ईमानदारी को महत्त्व नहीं दे रहा है तो उसकी भाषा का भ्रष्ट हो जाना स्वाभाविक है। कुँवर जी भाषा के दूषित होने की वजह हमारी जीवन-शैली में ढूंढते हैं। स्वार्थी मनुष्य भाषा के संवेदनशील रूप को नहीं रच सकता। अब जब भाषा के दूषित होने का स्रोत हमारी जीवन-शैली में है तो उसका परिमार्जन भी हमारी जीवन-शैली में बदलाव से ही संभव है। 'शब्द' से भाषा की निर्मिति के तरीकों को कुँवर नारायण बदलना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि भाषा की निर्मिति सदाचरण द्वारा हो। दरअसल कुँवर जी शब्द को अमूर्त वस्तु की तरह नहीं देखते हैं। वे शब्द की परिकल्पना जीवित रूप में करते हैं और मनुष्य से यह गुज़ारिश करते हैं कि वह मानवीय भावनाओं को जीवन और भाषा में संरक्षित करे- "हज़ारों वर्षों में झूठ, मक्कारी और स्वार्थ का माध्यम बनती रही भाषाओं के शब्द बिल्कुल भ्रष्ट और दूषित हो चुके हैं। ज़रूरी है कि अब हम एक नयी भाषा का अविष्कार करें-जो शब्दों के बजाय केवल सदाचरण द्वारा मुखर हो।"[8]

कुँवर जी चूँकि भाषा-प्रयोग के प्रति सचेत हैं इसलिए यह महसूस कर पाए कि मनुष्य के व्यावसायिक, राजनीतिक स्वार्थों ने उसे चालाक और मक्कार बना दिया और इस चालाकी और मक्कारी ने भाषा का सरलीकरण करने के चक्कर में उसकी संभावनाओं को संकुचित कर दिया है। कविता उन संभावनाओं को फ़िर से बल देती है। वह बताती है कि भाषा की पहुँच उन परतों तक भी है जहाँ व्यावसायिकता और राजनीति नहीं पहुँच सकती। 'चालाकी' और 'मक्कारी' व्यक्ति को श्रेष्ठ विचारों से दूर ले जाती है। कविता भाषा के द्वारा जीवन में श्रेष्ठ विचारों और अनुभूतियों के पुनर्वास का कार्य करती है। मनुष्य की चेतना और उसके मर्मस्थल पर स्वार्थ की परत इतनी मोटी हो गयी है कि मनुष्य की भाषा वहाँ तक नहीं पहुँच पा रही है। कविता भाषा के द्वारा बौद्धिक और भावनात्मक स्तरों तक पहुँचने की कोशिश है। कुँवर नारायण विनोद भारद्वाज के साथ बातचीत के क्रम में कहते हैं- "कविता एक तरह कहें तो उस भाषा का भंडाफोड़ है

जिसके पीछे केवल व्यावसायिक, राजनीतिक या अन्य किसी प्रकार के स्वार्थों की मक्कारी और चालाकी हो।"[9]

अगर सूक्ष्मता से सोचा जाए तो जीवन की आपाधापी में हमने अपने आसपास देखना बंद कर दिया है, अंतरात्मा में झाँकने की बात तो बहुत दूर की है। हमारा सौन्दर्य-बोध भी इतना स्थूल हो चुका है कि कलाओं के नाम पर बाज़ार जो दिखाना चाहता है हमने उसे ही अपनी रुचि का हिस्सा बना लिया है। मनोरंजन के नाम पर जो फूहड़ सामग्री परोसी जा रही है उससे नैतिक जवाबदेही की आशा नहीं की जा सकती। ध्यातव्य है कि जीवन सरल और एक-रेखीय नहीं है वह जटिल है इसलिए यह ज़रूरी है कि चाहे वह सिनेमा हो, कहानी हो या कविता उसकी भाषा ऐसी होनी चाहिए कि वह जटिल से जटिल गुत्थियों को अभिव्यक्त कर सके। साहित्य एवं कलाओं की भाषा ऐसी होनी चाहिए जो मनुष्य के सौंदर्य-बोध में विस्तार दे। कुँवर नारायण इस संदर्भ में लिखते हैं- "कविता का सामाजिक दायित्व इसमें भी है कि वह हमें सौंदर्य के प्रति संवेदनशील बनाये रखे। भाषा, जो प्रतिक्षण हमारी ज़बानों पर है, उस कोशिश की सबसे उर्वर जमीन है और कविता इस ज़मीन की सबसे कोमल व आकर्षक उपज।"[10]

जब शब्द की दुनिया में कुँवर जी भ्रमण करते हैं तो समय और स्थान की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए नज़र आते हैं। ध्यातव्य है कि एक कवि की चिंतन-प्रणाली केवल सम-सामयिक घटनाओं और परिस्थितियों से निर्मित नहीं हुआ करती है। उसकी निर्मिति में इतिहास, दर्शन, संस्कृति, परंपरा आदि की महती भूमिका होती है। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए हम भाषा को उस सेतु के रूप में पाते हैं जो औपनिषदिक और आधुनिक प्रसंगों को जोड़ती है।कुँवर जी की भाषा के संदर्भ में निरंजन श्रोत्रिय का मत दृष्टव्य है- "कुँवर जी की भाषा में औपनिषदिक और आधुनिक प्रसंगों के बीच कोई संरचनात्मक खाई नहीं है। वह समय के अंतराल को बयां जरूर करती है लेकिन उसे अभिव्यक्त करने वाली भाषा खण्डित नहीं

है।"[11]कुँवर नारायण की कविताओं में एक ओर उस समृद्ध विरासत का उत्सव दिखता है जिसमें विभिन्न संस्कृतियाँ भारत की संस्कृति के संपर्क में आयीं और अपनी-अपनी तरह से विकसित हुईं तथा भारतीय हो गयीं। तो दूसरी ओर इनकी कविताएँ इस समृद्ध सांझी सांस्कृतिक विरासत को विनष्ट किये जाने की साक्षी भी हैं। कुँवर नारायण के चिंतन का फ़लक इतना विस्तृत है कि उनके लिए दुनिया के किसी भी देश, किसी भी काल का साहित्य, सोच-विचार, कलाएँ एवं संस्कृतियाँ परायी नहीं हैं। साहित्य और कलाओं के साथ उनका यह व्यापक जुड़ाव उनकी वैश्विक नागरिकता को बल देता है। कुँवर जी मानते हैं कि विविध कलाएँ अलग-अलग होकर भी एक दूसरे से अंतरंग रूप में जुड़ी हुई हैं।

भाषा कुँवर जी की रचना-प्रक्रिया का एक महत्वपूर्ण अंग है। एक ऐसा अंग जो उनकी संवेदना से निर्मित है। इनकी कविताओं में रूप या फॉर्म किसी अतिरिक्त चेष्टा या प्रयास का प्रतिफलन नहीं है बल्कि कविता की मूल संवेदना का एक अभिन्न हिस्सा है। कुँवर जी अभिव्यक्ति की किसी भी प्रणाली से परहेज नहीं करते हैं शर्त बस इतना है कि भाषा स्वाभाविक रूप से कविता में आ रही हो। इसलिए कविता की रचना-प्रक्रिया के दौरान कुँवर जी भाषा को लेकर अतिरिक्त सावधान रहते हुए भी बहुत सहज रहे हैं। यह सहजता उनके सुदीर्घ भाषाई अनुष्ठान का प्रतिफलन है। कविता के संदर्भ में 'छंद' या 'अलंकार' की अनिवार्यता को कुँवर नारायण ने कभी भी स्वीकार नहीं किया है। 'छंद' और 'कविता' के अंतःसंबंधों के विषय में कुँवर जी अपनी डायरी 'दिशाओं का खुला आकाश' में लिखते हैं- "बिना छन्द के अच्छी कविता नहीं हो सकती यह मानना ग़लत है। मैं छन्द में भी लिखना पसन्द करता हूँ, पर इस कट्टरता को नापसन्द करता हूँ कि जो छन्द में नहीं, वह कविता नहीं। छन्दों की दुनिया भी जटिल और पेचीदा है : अक्सर हम उनका सरलीकरण करके कुछ ही छन्दों को कविता का पर्यायवाची मान लेते हैं।"[12]

दरअसल कुँवर नारायण की प्रबुद्ध चेतना कविता रूपी भवन के निर्माण के लिए ज़िन्दगी से कच्चा माल इकट्ठा करती है, छंदों या अलंकारों से नहीं। जीवन और लेखन में वे स्वाधीनता को महत्त्व देते हैं। यह स्वाधीनता केवल विचारों के स्तर पर नहीं है बल्कि भाषा प्रयोग के मामले में भी वे स्वाधीन रहना चाहते हैं। कुँवर जी की कई कविताओं में हम 'छंद' और 'अलंकार' का सुंदर प्रयोग देखते हैं जो इस बात का गवाह है कि इनके प्रयोग से कवि को परहेज नहीं है। लेकिन कभी इनकी कविता छंद के बंधन में जकड़ी हुई नहीं नज़र आती, न ही अलंकारों के बोझ से दबी हुई। कविता की भाषा को कुँवर नारायण हर कीमत पर आज़ाद रखना चाहते थे और इस चाह में वे काफ़ी हद तक सफ़ल भी हुए। उनकी कविता की यह कोशिश रही है कि वह भाषा के ध्रुवान्तों तक फैल सके। कुँवर नारायण की काव्य-भाषा में जो सहजता है उसके पीछे कवि के सोच-समझ की परिपक्वता और गहराई दिखती है। यतीन्द्र मिश्र के साथ बातचीत में वे कहते हैं- "कविता और भाषा की कोई सीमा नहीं। एक कविता की भाषा उसके अपने भीतरी तर्क और जरूरतों से निकलती है। जब भी हम भाषा की सीमा बनाएँगे कि वह इस प्रकार की हो या उस प्रकार की हो, कविता की भी सीमाएँ अपने आप बन जाएँगी। मैं कविता और भाषा के बीच बिल्कुल खुला और उन्मुक्त विचरण पसन्द करता हूँ और इस विचरण के लिए भाषा का बड़ा-से-बड़ा अनुभव क्षेत्र भी कम है। कबीर, मीर, निराला इस आज़ादी के सुपरिचित उदाहरण हैं जिन्होंने कदम-कदम पर भाषा के सुपरिचित मुहावरों और वाक्य-विन्यासों को तोड़ा है, और काव्य-रचना को भाषा की उन हदों पर संभव बनाया है जहाँ न शास्त्रों का आतंक है न वैयाकरणों का!"[13]

कविता के 'रूप' और 'कथ्य' की बहस बहुत पुरानी है लेकिन कुँवर नारायण जब काव्य-भाषा के संदर्भ में अपने विचार रखते हैं तो वे इस बहस को एक अलग नज़रिए से देख रहे होते हैं। 'शब्द-विन्यास' कितने अलंकृत हैं या कविता कितनी तुकबंदी से युक्त है इससे ज़्यादा महत्त्व कुँवर जी इस बात को देते हैं कि कविता में प्रयुक्त 'शब्द-विन्यास' कितने गहरे अनुभवों को स्पर्श कर पा रहा है। इस दृष्टिकोण से सोचने पर 'रूप' और 'कथ्य' आपस में मिलते हुए नज़र

आते हैं। कुँवर नारायण की कविताओं को पढ़ते हुए पाठक यह महसूस करता है कि इसके केंद्र में ज़िन्दगी है और ज़िन्दगी से जुड़े सवाल हैं। 'नयी कविता' ने जिन विमर्शों को जन्म दिया है उसका मूल उद्देश्य कविता के 'रूप' और 'कथ्य' में बुनियादी परिवर्तन करना रहा है। और, इस बुनियादी परिवर्तन की ज़रूरत को कुँवर नारायण भी महसूस करते हैं इसलिए उनकी कविताओं में गिन-गिनकर मात्राएँ नहीं बिठायी गयी हैं, ढूँढ-ढूँढकर तुक नहीं मिलाए गये हैं, चुन-चुनकर अलंकार नहीं लाये गये हैं, निचोड़-निचोड़कर रस नहीं निकाले गये हैं। इन कविताओं की बस एक कोशिश रही है- 'जीवन से जुड़ने की कोशिश'। और, इस जुड़ाव की कोशिश जितना कविता का 'कथ्य' करता है उतना ही या कई बार उससे भी अधिक उसका 'रूप' कर रहा होता है। कविता के कथ्य और रूप के विषय में कुँवर नारायण कहते हैं- "'फॉर्म' और 'कन्टेन्ट' यानी 'रूप' और 'कथ्य' को लेकर बहस वर्षों से चली आ रही है, जैसे कभी 'शब्द' और 'अर्थ' को लेकर बहस सदियों तक चली। इस तरह की अनेक बहसें हैं जिन्हें यदि 'वैकल्पिक' ढंग से रखकर चलाया जाए तो अनन्तकाल तक चलती रह सकती हैं : उन्हें यदि 'सामासिक' ढंग से रखकर सोचा जाए तो बहस अपने आप ख़त्म हो जाती है। जैसे 'शब्द' और 'अर्थ' की संयुक्त स्थिति बनती है, वैसे ही रूप और कथ्य की भी। उन्हें विभक्त करके प्रतिद्वंद्वी स्थिति में रखना एक अन्तहीन बहस की शुरूआत है।... 'फॉर्म' और 'कथ्य' को अलग-अलग सोचना अपने आप में एक अंतर्विरोध है। एक उत्कृष्ट रचना में वे एक दूसरे के पूरक होते हैं।"[14]

कुँवर नारायण जब काव्य-भाषा पर अपने विचार प्रस्तुत करते हैं तो उसके माध्यम से उनकी काव्य-रचना के प्रतिमानों को समझा जा सकता है। काव्य-रचना के ये प्रतिमान उन काव्य-आलोचकों के सामने भी नयी चुनौतियाँ प्रस्तुत करती हैं जो पारंपरिक काव्य-निकषों पर कविता की परख के आदी हैं। कुँवर नारायण 'रूप' के विषय में फ़र्क तरह से इसलिए भी सोच पाते हैं क्योंकि 'कविता' को वे 'भाव' या 'अनुभव की अभिव्यक्ति' मात्र से जोड़कर नहीं देखते हैं। भाषाशास्त्री जिस रूप में भाषा के विषय में सोचते हैं, कुँवर नारायण का चिंतन उससे भिन्न है।

एक कवि के रूप में वे निरन्तर शब्दों से संवाद करते हैं। इस संवाद का प्रतिफलन है कि उनकी कविताओं में कोई भी शब्द अपने रूढ़ अर्थ तक सीमित नहीं रह पाता। शब्दों के प्रचलित अर्थ को चुनौती देती इनकी काव्य-संरचना अर्थ-सामर्थ्य को सीमित नहीं होने देती है। उन्होंने अपनी कविताओं में न तो जीवन के किसी पक्ष को अग्राह्य माना है, न ही किसी शैली विशेष को। भाषा-प्रयोग के नाम पर कुँवर नारायण कभी अराजक नहीं हुए। वे भाषा-संसार को अपनी कविताओं द्वारा व्यापक बनाना चाहते हैं और इसमें बहुत हद तक सफ़ल भी होते हैं। निरंजन श्रोत्रिय ने कुँवर नारायण की काव्य-भाषा के संदर्भ में लिखा है कि "कुँवर नारायण ने अपनी काव्य-भाषा को इसी चेतस मनीषा से पाला-पोसा-संवारा है। साथ ही वे अपनी काव्य-भाषा में एक आन्तरिक प्रत्यास्थता (Elasticity) भी विकसित करते हैं। यह लचीलापन भाषा को अभिव्यक्ति की अपरिमित संभावनाओं से भर देता है।"[15]

निरंजन श्रोत्रिय जिस 'अभिव्यक्ति की अपरिमित संभावना' की बात कर रहे हैं उसकी ज़रूरत हमारे समय की भाषा में बहुत शिद्दत से महसूस की जा रही है। आख़िर क्या वजह है कि हमारी भाषा में मानवीय-मूल्यों की झलक कम मिलती है? क्या कारण है कि हमारी भाषा में वे शब्द रच-बस गये हैं जिनका संबंध जीवन की स्थूल ज़रूरतों से है? जीवन की जटिलता और उन जटिलताओं के बीच निहित संभावनाओं के विषय में हमारी भाषा ने विचार करना बंद कर दिया है। कुँवर नारायण जब अपनी कविताओं में मनुष्यता की बात करते हैं, मित्रता और प्रेम पर जोर देते हैं, साम्प्रदायिकता और भ्रष्टाचार का विरोध करते हैं तो इनका माध्यम भाषा को बना रहे होते हैं और इस पूरी प्रक्रिया में वे भाषा की आंतरिक शक्ति में विस्तार करते नज़र आते हैं। बकौल कुँवर नारायण- "कविता मेरे लिए केवल एक अनुभव या भाव की अभिव्यक्ति मात्र नहीं, वह ज्यादा फैले और ज्यादा गहरे 'भाषायी जगह' (लिंग्विस्टिक स्पेस) की रचना या खोज भी है।"[16]

ध्यातव्य है कि कवि के चिन्तन के निर्माण में परंपरा और स्मृति, इतिहास और दर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका रही है लेकिन कविता में परंपरा, इतिहास, संस्कृति, दर्शन आदि भाषा के द्वारा अभिव्यक्ति पाते हैं इसलिए ये कविताएँ उन विस्मृत मूल्यों के भाषा में पुनर्वास का भी कार्य करती हैं जो हमारे अतीत से संबंधित हैं और मानवता के लिए आवश्यक हैं। कुँवर जी की कविताओं में जो हम 'अमूर्त' की अभिव्यक्ति देखते हैं वह भी कहीं न कहीं हमारी भाषा को विस्तृत करने का एक प्रयास है। वह भाषा जो मूर्त वस्तुओं तक सिमटती जा रही है उसे 'अमूर्तन' एक चुनौती देता है। यह दरअसल भाषा में हमारी आंतरिक जीवनशक्ति के तत्व को शामिल करने का प्रयास है। भाषा में अगर 'अमूर्त' को स्थान नहीं मिलेगा तो हमारे अनुभव जगत के एक विस्तृत क्षेत्र की भाषिक अभिव्यक्ति मुश्किल होती चली जाएगी और धीरे-धीरे हमारे अनुभव का दायरा भी सिमटता चला जाएगा। कुँवर नारायण 'अमूर्तन' के विषय में लिखते हैं- "अमूर्तन भी कविता के व्याकरण का ज़रूरी हिस्सा है। यह पद चित्रकला से आया है। मूर्त-कला के प्रतिपक्ष में अमूर्तन का विकास हुआ : ठोस के विरूद्ध अ-ठोस। घनत्व और स्पष्ट की अपेक्षा वायवीय और अ-स्पष्ट का आविर्भाव- एक तरह से भौतिक की वाचाल बहुलता और ज्यादती के खिलाफ अ-भौतिक का राहत देने वाला सूक्ष्म अवकाश या आत्मलीन अंतर्आलाप। अमूर्तन के बिना कविता वैसी ही होगी, जैसे शब्दों के बीच की जगह के बिना भाषा।"[17]

भाषा की बदौलत कुँवर नारायण अपने समय और समाज के सरोकारों पर विचार करना चाहते हैं। लेकिन यह कार्य आसान नहीं है ख़ासकर तब जब भौतिक जीवन में आए बदलावों ने भाषा-प्रयोग को बुरी तरह प्रभावित किया हो। आज की पीढ़ी भाषाई अपसंस्कृति के दौर से गुज़र रही है। मानवीय गुणों की अपेक्षा व्यावसायिक लेन-देन से संबंधित शब्दावलियों से हमारी भाषा भर गयी है। भाषा का 'मानवीय' न होकर 'मशीनी' हो जाना एक अलग तरह की त्रासदी है। यह केवल भाषा का संकट नहीं है यह उस संवेदनहीन जीवन की ओर इशारा करता है जिसमें आपसी-संबंध, मानवता, ईमानदारी और हमदर्दी जैसे भाव अप्रासंगिक लगने लगें। किसी भाषा

पर दूसरी भाषा के प्रभाव को कुँवर नारायण ग़लत नहीं मानते हैं। आपसी संवाद से भाषाएँ समृद्ध हुआ करती हैं। परन्तु हिंदी भाषा पर अंग्रेज़ी भाषा का प्रभाव जिस तरह से पड़ रहा है उसे वे चिंता का विषय मानते हैं इस प्रभाव के विषय में कुँवर नारायण लिखते हैं- "हिन्दी भाषा में लिखना अक्सर मुझे एक ऐसी नाहक मशक्कत जान पड़ती है, जिसके पढ़ने वालों की संख्या अभी तैयार नहीं हुई है, और जो तैयार हो रही है वह भी बुरी तरह घटिया अंग्रेज़ी की चपेट में आ गयी है- निहायत बाज़ारू क़िस्म की भोंदू अंग्रेजी की अपसंस्कृति हमारी भाषा, रहन-सहन और आचरण, दोनों पर छाती जा रही है।"[18]

कुँवर नारायण के भाषा-संबंधी विचार उनकी रचना-प्रक्रिया को समझने के दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण हैं। ये विचार काव्य-भाषा संबंधी आलोचना के लिए नये नियामक की ज़रूरत को सिद्ध करते हैं। भाषा में अभिव्यक्ति की अपरिमित संभावनाएँ हैं। अगर कोई कवि शास्त्रीय नियमों के बोझ तले दबकर उन संभावनाओं को संकुचित करता है तो यह कविता और भाषा दोनों पर ज़्यादती है। कुँवर नारायण के भाषा-संबंधी विचार इसलिए भी महत्वपूर्ण हैं कि इनके माध्यम से यह समझा जा सकता है कि भाषा सिर्फ़ जीवनानुभवों को व्यक्त करने का माध्यम नहीं है बल्कि मनुष्य के विलुप्त होते जीवन-स्रोतों की तलाश का साधन भी है। साथ ही उन महत्वपूर्ण जीवन-स्रोतों को भाषा में संरक्षित भी किया जा सकता है ताकि आने वाली पीढ़ियाँ उसका लाभ ले सकें। कुँवर नारायण के भाषा-संबंधी विचार कई मायनों में नयी कविता के आलोचकों को एक मननशील कवि का रचनात्मक प्रत्युत्तर भी है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-80
2. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-85
3. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-5
4. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-86-87
5. कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-53
6. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-85
7. सं. डॉ. अमित कुमार पाण्डेय, हिंदी भाषा और साहित्य के विविध परिदृश्य, पृष्ठ-127
8. यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-95
9. विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-17
10. यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-27
11. निरंजन श्रोत्रिय, समावर्तन, मार्च 2013, पृष्ठ-59
12. यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-73
13. सं. यतीन्द्र मिश्र, कुँवर नारायण उपस्थिति, पृष्ठ-13
14. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-144
15. सं. ओम निश्चल, अन्वय : साहित्य के परिसर में कुँवर नारायण , पृष्ठ-345
16. विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-35
17. यतीन्द्र मिश्र, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-54
18. कुँवर नारायण, दिशाओं का खुला आकाश, पृष्ठ-71

5.2 प्रतीकात्मकता एवं बिम्ब-योजना

कुँवर नारायण की कविताओं का पाठक भाषा की हलचलों एवं बेचैनियों को महसूस कर सकता है। कवि भाषा के माध्यम से भावनाओं को संरचना देते हैं। इनकी भाषा संयत है क्योंकि भावुक होकर लिखने के बजाए शब्दों को बरतने में एहतियात को ये ज़रूरी मानते हैं। कम शब्दों में बड़े आशयों को व्यक्त करने की वजह से ये कविताएँ भाषा के सामर्थ्य और संभावनाओं से हमारा परिचय कराती हैं। अनुभूत सत्य को भाषा में बयां करना और इस तरह से करना कि अनुभव और भाषा दोनों विस्तृत होती हुई नज़र आएँ, आसान कार्य नहीं है! इसके लिए स्वयं को माँजना पड़ता है। अनुभूति के स्तर पर भी और भाषा के स्तर पर भी। कुँवर नारायण ने इस कार्य को बखूबी किया है। कलात्मक भाषा के सधे हुए इस्तेमाल की वजह से इनकी कविताओं में भावना का नियंत्रित संयोजन है। कुँवर नारायण की भाषिक विशिष्टताओं में प्रतीकात्मकता एवं बिम्ब-योजना महत्वपूर्ण तत्व हैं। वे इसे न सिर्फ़ काव्यभाषा का ज़रूरी अंग मानते हैं बल्कि बिम्ब और प्रतीक के कुशल संयोजन को कविता की पहचान निर्मिति में सहायक तत्व के रूप में स्वीकारते हैं- "बिम्ब और प्रतीक काव्यभाषा के ज़रूरी अंग हैं। मुक्तछन्द के आने पर कविता में उनकी ज़रूरत पर ज़्यादा ध्यान दिया जाने लगा। वे छन्दों का विकल्प तो नहीं हैं पर किसी हद तक कविता की अलग पहचान बनाने और बनाए रखने में कुछ उनका कुशल संयोजन और संरचना की विशेष भूमिका रही है।"[1]

इस उप अध्याय में कुँवर नारायण की कविताओं में प्रयुक्त प्रतीकों एवं बिम्बों के संयोजन को विश्लेषित किया गया है।

➢ प्रतीक

प्रतीक शब्द का इस्तेमाल प्रायः उस दृश्य या उपस्थित वस्तु के लिए किया जाता है जो किसी अदृश्य या अनुपस्थित वस्तु या विषय का बोध कराता है। मानव जीवन प्रतीकों से भरा हुआ है। जब हम किसी वस्तु या विषय के बारे में अमूर्त चिंतन करते हैं तो प्रायः प्रतीकों का सहारा लेते हैं। कुछ प्रतीक तो मनुष्य की चेतना में सार्वभौम रूप से बस चुके हैं जैसे 'सिंह' हमारी चेतना में वीरता के शाश्वत प्रतीक के रूप में बस चुका है। ऐतिहासिक और पौराणिक सन्दर्भों ने भी प्रतीक के अर्थ निर्धारण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। आज अगर किसी को 'मीरजाफ़र' या 'जयचंद' की संज्ञा दी जाती है तो इसका अर्थ है कि उसे विश्वासघाती या देशद्रोही कहा जा रहा है। ठीक इसी तरह 'सीता' पवित्रता की प्रतीक समझी जाती हैं। प्रतीक को परिभाषित करते हुए डॉ. नित्यानन्द तिवारी लिखते हैं- "अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु विधान को प्रतीक कहते हैं, जो देश, काल एवं सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चिर साहचर्य के कारण किसी तीव्र भावना को जाग्रत करता है।"[2]

कविता के संदर्भ में प्रतीक का विशेष महत्त्व इसलिए भी है क्योंकि वह केवल अर्थ की अभिव्यक्ति तक सीमित नहीं रहता है बल्कि सदियों लम्बी अनुभव-यात्रा को वर्तमान के अर्थ-सन्दर्भों से जोड़ने की योग्यता रखता है। कुँवर नारायण की कविताओं में प्रतीक-योजना के सुंदर उदाहरण देखने को मिलते हैं। प्रतीकों की समृद्धि की वजह से कुँवर जी की कविताएँ विशिष्ट अर्थ से युक्त हुई हैं। प्रतीकवादी कवियों के लेखन ने युवा अवस्था से ही कुँवर नारायण को प्रभावित किया है। ख़ुद पर यूरोप के रोमानी कवियों के असर की बात उन्होंने अपने कई साक्षात्कारों में स्वीकारा है। उन्होंने कई प्रतीकवादी कवियों की कविताओं का अनुवाद भी किया है जो 'न सीमाएँ न दूरियाँ' नामक संकलन में संग्रहित हैं। प्रतीकवादी कवियों ने कविता के संदर्भ में जो

बुनियादी सवाल उठाये वह नयी कविता के संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण हैं। बकौल कुँवर नारायण "1880 के लगभग फ्रेंच कवि मलार्मे के नेतृत्व में पेरिस में प्रतीकवाद की स्थापना हुई। 'वाद' की दृष्टि से वह शायद क़रीब दस वर्षों तक ही ज़ोरों पर रहा होगा, लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से वह 19 वीं सदी के उत्तरार्ध की सबसे महत्वपूर्ण काव्यधारा थी जिसने नयी कविता की नींव डाली।"[3]

प्रतीकवादी कवियों की कविताओं को जब हम ध्यान से पढ़ते हैं तो पाते हैं कि उनमें ऐसे शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिसकी वजह से कविता छंद के बंधन से मुक्त होकर भी वाद्यमय और सजीली है। यह विशिष्टता कुँवर जी की कविताओं में भी है। उनकी कई कविताएँ संगीतमय हैं, छंद की लय से नहीं अपितु शब्दों के चयन की वजह से। ध्यातव्य है कि सुन्दर शब्द-रचना और मर्मस्पर्शी अर्थ-वैभव को कुँवर जी काव्य का असली गुण मानते हैं। छन्द, तुक आदि को उन्होंने बाहरी अलंकरण ही माना है। कुँवर जी ने अपनी कविताओं में ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों, छोटे-छोटे बिम्बों, गूढ़ अर्थ वाले शब्दों को इस प्रकार रखा है कि ये कविताएँ सीधा-सीधा कोई अर्थ न बतलाते हुए भी जीवन के किसी संदर्भ विशेष को व्यापक फ़लक प्रदान करती हैं।कुँवर नारायण की कविताओं में निहित गूढ़ अर्थ को तभी समझा जा सकता है जब सांस्कृतिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, प्राकृतिक और मिथकीय प्रतीकों से हम अवगत हों। अपनी प्रारम्भिक कविताओं पर प्रतीकवादी कवियों के असर को स्वीकारते हुए कुँवर जी लिखते हैं कि "मैं अट्ठाईस वर्ष का था, जब मेरा पहला कविता-संग्रह 'चक्रव्यूह' प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व मैंने अंग्रेज़ी में लिखना प्रारम्भ किया था, और इस निर्मिति काल में मुझ पर यूरोप की रोमानी कविताओं का पुरज़ोर असर था। अंग्रेज़ी रोमानी कवियों की अपेक्षा मैं फ्रांसीसी प्रतीकवादियों, विशेषकर बॉदलेयर, मलार्मे, वर्लैन, रैम्बो आदि से अधिक प्रभावित था। 'चक्रव्यूह' में कई कविताएँ हैं जिन पर प्रतीकवादी प्रभाव दिखते हैं। उदाहरण के लिए मुक्त छन्द (फ्री वर्स) ने मुझे हिन्दी कविता के सख्त छन्द-विधान को अधिक स्वतन्त्रता और अन्वेषणों के साथ रूपान्तरित करने में मदद की।"[4]

कुँवर नारायण ने अपनी कई कविताओं में नवीन प्रतीकों का भी सृजन किया है। उदाहरण के लिए जब कोई पाठक उनकी कविता 'सम्मेदीन की लड़ाई' का पाठ करता है, जोकि उनके काव्य-संग्रह 'कोई दूसरा नहीं' में संग्रहित है तो पाता है कि 'सम्मेदीन' एक व्यक्ति मात्र नहीं है, वह प्रतीक है भ्रष्टाचार के खिलाफ़ खड़े योद्धा का। नैतिक साहस के उजाले ज़िन्दगी ख़त्म होने के बाद भी सलामत रहते हैं, इसका गवाह है 'सम्मेदीन की लड़ाई'। उदाहरण दृष्टव्य है-

"बचाये रखना

उस उजाले को

जिसे अपने बाद

ज़िन्दा छोड़ जाने के लिए

जान पर खेलकर आज

एक लड़ाई लड़ रहा है

किसी गाँव का कोई ख़ब्ती सम्मेदीन"[5]

कुँवर जी ने अपनी कई कविताओं में ऐतिहासिक चरित्र को भी काव्य का आधार बनाया है। परन्तु जब हम इन कविताओं का सजगता से पाठ करते हैं तो पाते हैं कि इन कविताओं के सृजन का उद्देश्य ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन नहीं है। वे सदियों से हमारी स्मृति में बैठे इतिहास का सहारा लेकर युगीन परिस्थितियों को, अपने समय की चुनौतियों को प्रभावी ढ़ंग से व्यक्त करते हैं। उनकी एक कविता का शीर्षक है- 'आज भी'। इस कविता में कवि लिखते हैं-

"उसके यह सन्देह प्रकट करते ही कि पृथ्वी नहीं

शायद सूरज ही घूमता हो

पृथ्वी के चारों ओर !

उसके चारों ओर इकट्ठा होने लगते

उतावले लोग। फिर एक बार

गैलीलियो की तरह

उसकी हत्या के लिए उतावले लोग।

झूठ या सच से नहीं

इस तरह यकीन रखने वालों के बहुमत से

डरता हूँ

आज भी !"[6]

ध्यातव्य है कि गैलीलियो एक ऐतिहासिक चरित्र है और उसकी हत्या के लिए उतावले लोगों का संबंध भी इतिहास से है। परन्तु जब यह प्रसंग कुँवर नारायण की कविता में प्रयुक्त होता है तो यह हमारे समय की भयावहता को दिखाता है। किसी की हत्या को उतावले लोगों का समूह डरावना तो है पर विडंबना है कि तमाम सभ्यताओं के विकास के बावजूद वह आज की हकीक़त है। आये-दिन जब मॉब-लिंचिंग की घटनाएँ सुनने को मिलती हैं तो जो डर कवि के मन में है, वह हमारा सामूहिक डर बन जाता है। कुँवर जी प्रतीकों के माध्यम से जटिल से जटिल मनोदशा को अपनी कविताओं में सरलता से अभिव्यक्त कर पाते हैं। कुँवर नारायण की कविताओं में इतिहास को राजाओं या विजेताओं की दृष्टि से नहीं देखा जाता है। वे इतिहास में उन प्रतीकों के माध्यम से

प्रवेश करते हैं जो आज भी हमारे समाज में ज़िंदा हैं। इन प्रतीकों को कभी-कभी कवि ने व्यक्ति की मानसिकता में भी ज़िंदा पाया है। इसलिए जब कविता में इन प्रतीकों का उपयोग किया जाता है तो उसे प्रतीकों के माध्यम से अपने समय के जटिल यथार्थ की अभिव्यक्ति के रूप में भी देखा जाना चाहिए।

ऐतिहासिक प्रतीक की तरह ही पौराणिक प्रतीकों का भी इस्तेमाल कुँवर नारायण ने अपनी कई कविताओं में किया है। 'चक्रव्यूह' नामक काव्य-संग्रह की कुछ कविताओं में कुँवर जी ने अभिमन्यु को प्रतीक बनाकर शाश्वत सत्य को अभिव्यक्त किया है। अभिमन्यु को छल से मारने के लिए उद्यत मानसिकता को प्रतीक बनाकर कुँवर नारायण लिखते हैं-

"जहाँ अभिमन्यु कोई भयों के आतंक से छूटा :

जहाँ उसने विजय के चन्द घातक पलों में जाना

कि छल के लिए उद्यत व्यूह-रक्षक वीर-कायर हैं,

-जिन्होंने पक्ष अपना सत्य से ज्यादा बड़ा माना"[7]

अपने पक्ष को सत्य से बड़ा मान लेने वाली प्रवृत्ति आज भी मौजूद है और कई बार उसकी उपस्थिति को आज के समय में महाभारत से भी ज़्यादा सशक्त रूप में महसूस किया जा सकता है। महाभारत से संबंधित प्रतीक का इस्तेमाल अपनी कई कविताओं में कुँवर जी ने किया है। महाभारत के अलावा उपनिषद से जुड़े प्रतीकों को भी कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में प्रयोग में लाया है। 'आत्मजयी' एवं 'वाजश्रवा के बहाने' कुँवर जी के अनूठे प्रयोगों के गवाह हैं। मिथकीय प्रतीकों के काव्य में इस्तेमाल से जुड़े प्रश्नों का जवाब देते हुए कुँवर नारायण कहते हैं- "मिथकीय संदर्भों और प्रतीकों को भी मैंने अपनी रचनाओं में लिया है लेकिन यह समझना गलत है कि मेरा काव्य-संसार उन्हीं तक सीमित है। उन्हें मैंने अपने काव्य-संसार की सीमाएँ बढ़ाने के

लिए 'इस्तेमाल' किया है। पौराणिक आख्यान, मिथक, पुराकथाएँ जनमानस की अधिक चित्रात्मक, बिंबमय और प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करने वाली जनभाषाएँ ही हैं-मेरी निजीभाषाएँ नहीं।"[8]

कुँवर जी जानते हैं कि आज का मनुष्य अपने प्राचीन अतीत से उतना भी कटा हुआ नहीं है जितना उसे समझ लिया जाता है। आज भी पुराणों, उपनिषदों से संबंधित पात्र हमारी चेतना में प्रतीक के रूप में विद्यमान हैं। कोई व्यक्ति जो बहुत पढ़ा लिखा नहीं भी है वह भी इन प्रतीकों के माध्यम से 'अपने जीवन-अनुभव' को 'कविता के अनुभव' के साथ जोड़ कर देख सकता है। कवि बार-बार पौराणिक मिथकों की ओर लौटते हैं क्योंकि वे जनमानस को उन मानवीय सच्चाइयों से जोड़ना चाहते हैं जिनकी आज की तकनीकी सभ्यता में विशेष ज़रूरत है। वे कविता द्वारा पाठकों को ज़्यादा बड़े चिंतन-क्षेत्र में ले जाना चाहते हैं ताकि पाठक ज़िन्दगी को भौतिक साधनों से ज़्यादा बड़े परिप्रेक्ष्य में देख पाएँ। 'आत्मजयी' का नचिकेता और वाजश्रवा कहने को तो पौराणिक पात्र हैं वस्तुतः वे उस मानसिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं जो हमारे समाज का हिस्सा है।नचिकेता की नियति हर युग के चिंतनशील, जिज्ञासु मनुष्य की नियति है। और, वाजश्रवा का भोगवादी जीवन आज के भौतिकतावादी जीवनशैली की प्रतिछवि है। कुँवर जी अपनी कविता में 'नचिकेता' और 'वाजश्रवा' को प्रतीक बनाकर उन विचारों और धारणाओं का पुनरावलोकन करते नज़र आते हैं जो आज हमारे लिए पहले से ज़्यादा प्रासंगिक हो गये हैं। कुँवर नारायण ने आत्मजयी की भूमिका में लिखा भी है-"नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति, तथा वाजश्रवा का क्रोध में नचिकेता को मृत्यु को दे देना, न केवल नयी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है बल्कि उन वस्तुपरक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषत्कालीन दृष्टिकोण का भी प्रतीक है जिनका एक रूप हम अपने आज के जीवन में भी पाते हैं।"[9]

यहाँ 'वस्तुपरक वैदिक' तथा 'आत्मपरक उपनिषत्कालीन' दृष्टिकोण को समझना ज़रूरी है। फ़िर वर्तमान से इसकी संगति को आसानी से समझा जा सकता है। वैदिककालीन मनुष्य प्राकृतिक शक्तियों को अपने अनुरूप रखने के लिए यज्ञ, तपस्या आदि करते थे उनका दृष्टिकोण मूलतः वस्तुवादी था, यही वह सूत्र है जिसे कुँवर नारायण हमारी भौतिक जीवन-शैली से जोड़ते हैं। कवि वैदिककालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण के प्रतिपक्ष में उपनिषत्कालीन अध्यात्म को रखते हैं। ध्यातव्य है कि उपनिषद में मनुष्य के आत्मिक-विकास को भौतिक विकास से ज़्यादा महत्त्व दिया गया है। जैसा कि कुँवर जी ने 'आत्मजयी' की भूमिका में भी ज़िक्र किया है कि "परोक्ष रूप से मेरे मन में यह साम्य भी था कि वाजश्रवा वैदिककालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है और नचिकेता उपनिषत्कालीन आत्म-पक्ष का"[10]

केवल ऐतिहासिक और पौराणिक प्रतीकों तक ही कुँवर जी की कविताएँ सीमित नहीं रही हैं। इन कविताओं का फ़लक बहुत विस्तृत है इसलिए प्रतीक भी जीवन के विभिन्न सन्दर्भों से लिये गये हैं। किसी भी क्षेत्र को कुँवर नारायण ने अग्राह्य नहीं माना। उनके जिज्ञासु स्वभाव ने अपने समय के सवालों को प्रभावी ढंग से रखने के लिए नित नवीन प्रतीकों को सृजित किया एवं उन प्रतीकों ने कवि के कथ्य को विस्तार दिया। 'चक्रव्यूह' काव्य-संग्रह में उनकी एक कविता 'आशय' शीर्षक से संग्रहित है। इस कविता में कवि ने यौन प्रतीकों द्वारा आज के सारहीन जीवनशैली को प्रकट किया है-

"अमाशय, यौनाशय, गर्भाशय,...

जिसकी ज़िन्दगी का यही आशय,

यही इतना भोग्य,

कितना सुखी है वह,

भाग्य उसका ईर्ष्या के योग्य!

हाय पर मेरे कलपते प्राण,

तुमको मिला कैसी चेतना का विषम जीवन मान?

जिसकी इन्द्रियों से परे जाग्रत हैं अनेकों भूख।"[11]

उक्त पंक्तियों में 'अमाशय', 'यौनाशय', और 'गर्भाशय' एक अंग विशेष मात्र नहीं हैं बल्कि वह धुरी है जिसके इर्द-गिर्द घूमने को आज का मनुष्य सम्पूर्ण जीवन मान लेता है। कवि का चेतनशील मन जीवन के आशयों की तलाश में इन्द्रियों से परे जाने को व्याकुल है क्योंकि वह जानता है कि दैहिक-दैनिक स्तर पर जीवन जीते रहना सुख तो दे सकता है पर सार्थक जीवन नहीं।

➢ बिम्ब-विधान

'बिम्ब'शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' (image) का हिंदी रूपांतरण है। बिम्ब के अर्थ को स्पष्ट करते हुए केदारनाथ सिंह लिखते हैं- "बिम्ब वह शब्द चित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होते हैं।"[12]बिम्ब एक ऐसा चित्र है जो पदार्थ न होते हुए भी उसकी प्रतिछवि का अहसास दिलाता है। मनुष्य की संस्कृति ज्यों-ज्यों विकसित हुई है मनुष्य की चेतना भी त्यों-त्यों विकसित होती गयी है। काव्यात्मक बिम्बों का विकास भी इस विकास के साथ-साथ हुआ है। बिम्बकी महत्ता का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि कविता में बिम्ब का मुख्य कार्य संप्रेषणीयता और प्रभाव को बढ़ाना है।

अगर 'बिम्बवाद' की बात की जाए तो वह पश्चिम का एक महत्वपूर्ण आंदोलन है जिसका आरम्भ टी.ए.हुल्मे ने किया था। 'बिम्बवाद' का उद्भव बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में

हुआ। बिम्बवादियों ने काव्य में विशेष अभिव्यक्ति पर बल दिया। कविता के क्षेत्र में सामान्य अभिव्यक्ति को वे नकारते हैं। प्रमुख कवि एवं आलोचक एजरापाउण्ड ने बिम्बवाद की घोषणाओं में निम्न तथ्यों का ज़िक्र किया-

- काव्य के रूप अथवा रचना-तंत्र को सर्वोपरी महत्त्व देना।
- नयी संवेदना के अनुकूल नयी लय-पद्धतियों की खोज।
- मुक्त छंद को मानव की मौलिक स्वातन्त्र्य चेतना के रूप में स्वीकार करने का आग्रह।
- विषय के निर्वाचन में पूर्ण स्वतन्त्रता।
- ताजे और मूर्त बिम्बों का अन्वेषण तथा अपूर्ण शब्दों का बहिष्कार
- ऐसी कविताओं का निर्माण करना जो 'संक्षिप्त' 'कठोर' और स्पष्ट हों।
- काव्य में प्रनशीलता का सिद्धांत।[13]

बिम्बवादियों का विचार था कि सुंदर कविता की रचना के लिए कम-से-कम शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। सफल कविता के मानकों का निर्धारण करते हुए बिम्बवादियों ने कम-से-कम शब्दों में सम्पूर्ण चित्र को खींच सकने की योग्यता को सर्वाधिक महत्त्व दिया। इन्होंने शिल्प प्रधान काव्य-रचना पर बल दिया एवं सार्थक शब्दों के चयन द्वारा दृश्य निर्माण को कविता की उपलब्धि के रूप में स्वीकारा। कालांतर में इनका पूरा ध्यान शिल्पगत प्रयोगों पर ही लगा रहा जिसकी वजह से बाह्य यथार्थ के प्रति इनके विचार निराशाजनक हो गये। विषय-वस्तु की उपेक्षा के कारण इनका विरोध हुआ परन्तु शैली-शिल्प संबंधी इनकी देन को नकारा नहीं जा सकता है।

आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब-विधान को बहुत महत्त्व दिया गया है। यहाँ बिम्ब का संबंध सिर्फ़ कविता के रूप से नहीं है, वह उसके विषय-वस्तु से भी गहरे अर्थों में जुड़ा होता है। विषय को मूर्त रूप में प्रकट करने के लिए कवि बिम्बों का सहारा लेते हैं। बिम्ब के द्वारा जटिल

अनुभूतियों को रूपायित करने का प्रयास किया जाता है। कविता का भाषा से घनिष्ठ संबंध है। यहाँ अभिव्यक्ति के तरीक़े बदलने से अर्थ बदल जाते हैं। बिम्ब काव्यभाषा का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है। 'बिम्ब' को केदारनाथ सिंह ने आधुनिक कविता के मूल्यांकन की कसौटी माना है- "मैं बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया पर ज़ोर इसलिए दे रहा हूँ कि आज काव्य के मूल्यांकन का प्रतिमान लगभग वही मान लिया गया है। एक अंग्रेज़ आलोचक का तो यहाँ तक कहना है कि आधुनिक कवि नये-नये बिम्बों की योजना के द्वारा ही अपनी नागरिकता का शुल्क अदा करता है। तात्पर्य यह कि प्राचीन काव्य में जो स्थान 'चरित्र' का था, आज की कविता में वही स्थान बिम्ब अथवा 'इमेज' का है।"[14]

'नयी कविता' के दौरान बिम्बों का सफल प्रयोग हमें देखने को मिलता है। इस दौर के लगभग सभी कवियों ने अपनी कविताओं को बिम्ब से सुसज्जित किया है। कुँवर नारायण की कविताओं में प्रयुक्त बिम्बों को समझने के लिए इतिहास, संस्कृति, पुराण का ज्ञान होना अनिवार्य है। एक कवि के रूप में कुँवर जी जानबूझकर ऐसे बिम्बों का प्रयोग करते हैं जिसका संबंध हमारे अतीत से है। कवि ने पुराने प्रतीकों से नवीन अर्थ सृजित किये हैं तथा समकालीन सन्दर्भों को अभिव्यक्ति प्रदान की है। अपनी डायरी में कुँवर नारायण लिखते हैं कि "कविता की शक्ति केवल नये बिम्ब दे सकने में नहीं है बल्कि अर्थ या अर्थ की एक नयी संस्कृति दे सकने में भी है।"[15]इसलिए कुँवर जी ने अपनी कविताओं में कहीं भी अनावश्यक बिम्ब निर्मित नहीं किया है। उनकी कविता बिम्बों के बोझ से बोझिल नहीं होती है। नये और ताज़े बिम्बों के माध्यम से उनकी कविता अर्थ की एक नयी संस्कृति देने में सफल होती है। कवि के रूप में कुँवर नारायण की यह भाषिक विशिष्टता है कि उनकी कविता बिम्ब-विधान की वजह से अर्थ की कई परतों को एक साथ खोलती है। इन बिम्बों ने कुँवर नारायण के काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि की है। उनकी कविता का कथ्य इन बिम्बों की वजह से आँखों के सामने घटित होते दृश्य की तरह प्रतीत होता है। कुँवर नारायण अपनी कविताओं में जिस प्रकार बिम्ब की निर्मिति करते हैं वह भाषा की सीमा

को विस्तार देता है। कुँवर जी के प्रसिद्ध खंडकाव्य 'आत्मजयी' की भाषिक विशिष्टताओं के संदर्भ में लिखते हुए रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'बिम्ब' के विषय में लिखा है कि "भाषा की एक सीमा होती है कि उसकी संरचना क्रमिक होगी। उसकी रचना चित्र या मूर्ति की तरह समग्रता में सामने नहीं आती।बिंब विधान भाषा के इस क्रमिक रूप की सीमा को तोड़ता है।अर्थ की अनेक परतों को एक साथ खोलता हुआ वह संपन्न होता है। इसलिए जटिल और कोमल अनुभव के तरह-तरह के तराश बिंब-प्रक्रिया में ही साक्षात्कृत होते हैं।"[16]

कुँवर नारायण अपनी कविताओं में बिम्ब-समायोजन को एक अलग ऊँचाई पर ले जाते हैं। कुँवर जी की लगभग सभी कृतियों में सुंदर बिम्ब-योजना को हम देख सकते हैं। 'तीसरा सप्तक' में पहली बार कुँवर जी की कविताएँ प्रकाशित हुईं थीं। इस संग्रह की कई कविताओं में बिम्ब-योजना को देखा जा सकता है। इसी संग्रह की 'जाड़ों की एक सुबह' कविता उनके अनूठे बिम्ब-विधान को दर्शाता है-

"रात के कम्बल में

दुबकी उजियाली ने

धीरे से मुँह खोला...

चितकबरी नागिन-सी

भाग रही शीत रात।"[17]

कुँवर नारायण की कविताएँ बिम्बों के बोझ से दबी नहीं हैं। बावजूद इसके इनकी कविताओं में काव्योपयोगी बिम्बों की भरमार है। चाहे प्रकृति से संबंधित बिम्ब हों या पुराणों से संबंधित बिम्ब, कुँवर नारायण ने इनके माध्यम से वर्तमान समय और उसकी विसंगतियों को

सफलतापूर्वक काव्य के रूप में रूपायित किया है। बिम्ब-विधान की दृष्टि से 'अपने-सामने' और 'परिवेश : हम तुम' की कई कविताएँ कवि की उत्कृष्टता को प्रमाणित करती हैं। 'अपने सामने' काव्य-संग्रह की एक कविता का शीर्षक है 'इन्तिज़ाम'। इसमें कवि ने अपने समय की विडंबना को बिम्बों के माध्यम से चित्रित किया है-

"कल फिर एक हत्या हुई

अजीब परिस्थितियों में।

मैं अस्पताल गया

लेकिन वह जगह अस्पताल नहीं थी।

वहाँ मैं डॉक्टर से मिला

लेकिन वह आदमी डॉक्टर नहीं था।

XXXXXXXXXXXXXXXXXXXX

फिर वहाँ एक अधमरा बच्चा लाया गया

जो बीमार नहीं भूखा था

डॉक्टर ने मेज़ पर से

ऑपरेशन का चाकू उठाया

मगर वह चाकू नहीं

जंग लगा छुरा था।

छुरे को बच्चे के पेट में भोंकते हुए उसने कहा

अब यह बिल्कुल ठीक हो जाएगा।"[18]

बिम्ब विधान की दृष्टि से इनका खंडकाव्य 'आत्मजयी' हिंदी साहित्य की अनुपम निधि है। चाहे नचिकेता की आत्महत्या के वक्त परिस्थिति की भयावहता को दिखाने के लिए प्रयोग में लाया गया बिम्ब हो या नचिकेता के विषाद के क्षणों में उसकी निरीहता और असहायता का निरूपण कवि ने बिम्ब-योजना द्वारा अर्थ को सघनता प्रदान किया है और कई जगहों पर बिम्ब की निर्मिति इस प्रकार हुई है कि वह नचिकेता की छटपटाहट, बेचैनी उस जैसी मनोवृत्ति वाले आधुनिक मनुष्य की बेचैनी मालूम होती है-

"उसकी निरपराध आँखों के अवसान में प्रतिदिन

एक सूर्य की बलि दी जाती,

और वह उस व्यर्थ वेदना की

छटपटाती पराकाष्ठा से गुज़रता-

बिना अस्त हुए

बिना शान्ति पाए।"[19]

इस कृति को पढ़ते हुए कई बार लगता है कि इसमें आधुनिक मनुष्य की जटिल मनःस्थितियों को बिम्ब के माध्यम से सजीव रूप में अभिव्यक्त किया गया है। बिम्बों की सघनता ने अर्थ को विस्तार दिया है। बिम्बों से युक्त होने के बावजूद कवि की भाषा स्वाभाविक नज़र

आती है। 'आत्मजयी' में प्रयुक्त बिम्ब के विषय में मैथिली शरण चौबे ने बिल्कुल ठीक लिखा है-"ऐसे विचार समृद्ध काव्य में, जहाँ हर प्रयोग पूरी चुनौती के साथ गुजरता है-बिम्ब अपनी स्वाभाविकता में आए हैं, जो कि कुँवर नारायण के कवि स्वभाव का प्रमाण हैं।"[20]

कुँवर जी की कविता बिम्बों के बोझ से दबती नहीं है, न उनका विचार दबता है। शिल्प के प्रति सजग होते हुए भी कुँवर जी ने कविता में विचार-पक्ष को कभी दबने नहीं दिया। कुँवर नारायण जब किसी स्थिति पर विचार करते हैं तो संवेदनात्मक रूप से उस स्थिति को महसूस कर रहे होते हैं। इसलिए उनकी कविता में भाव-विचार एकान्वित होते नज़र आते हैं। अपनी कविताओं में बिम्बों की रचना भी कुँवर नारायण ने इसी तरह से की है कि वे एक साथ विचार और भाव के स्तर पर पाठकों की चेतना को आंदोलित कर सकें। 'कुँवर नारायण की काव्य-कला' शीर्षक लेख में सत्यप्रकाश मिश्र लिखते हैं-

"वे उस स्तर को लेकर पूरी तरह सजग हैं, जहाँ अपेक्षित प्रभाव पैदा करने के लिए किसी बिंब को अनुकूल रूप में ढाला जा सके। 'पालकी', 'सम्मेदीन की लड़ाई' और 'भूल चूक लेनी देनी' कविताओं में यह साफगोई के साथ अपने बेहतरीन रूप में है।"[21]

कुँवर जी की कई कविताओं में प्राकृतिक बिम्ब भी हमें देखने को मिलते हैं। नपे-तुले शब्दों में कथ्य को दृश्य रूप में व्यंजित कर देने की कला में कुँवर जी को महारत हासिल है। दृश्यों और बिम्बों को उकेरते वक्त कवि किसी चित्रकार की तरह नज़र आते हैं। कुँवर नारायण संवेदना को तराशने और अभिव्यक्ति को माँजने में सिद्धस्त हैं। उनकी कविता में प्रयुक्त 'प्रतीक' और 'बिम्ब' कविता के आशय को विस्तार देते हैं।

संदर्भ ग्रन्थ:

1. सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-48
2. नित्यानन्द तिवारी, आधुनिक हिंदी काव्य में प्रतीक विधान, पृष्ठ-21
3. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-103-104
4. सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-85
5. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-19
6. कुँवर नारायण, अपने सामने पृष्ठ-91
7. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-135-136
8. सं. विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-82
9. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-9
10. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-9
11. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-43
12. सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-122
13. डॉ. शशि शर्मा, समकालीन हिन्दी कविता : अज्ञेय और मुक्तिबोध के संदर्भ में, पृष्ठ-25
14. सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-122
15. कुँवर नारायण, दिशाओं का खुला आकाश पृष्ठ-15
16. रामस्वरूप चतुर्वेदी, नयी कविताएँ : एक साक्ष्य, पृष्ठ-108
17. सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-161-162
18. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-28-29
19. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-44
20. सं. जीतराम भट्ट, इन्द्रप्रस्थ भारती, सितम्बर-अक्टूबर 2018, पृष्ठ-84
21. सं. विनोद तिवारी, पक्षधर, जनवरी-जून, 2015, पृष्ठ-34

5.3 काव्य-अभिव्यक्ति के अन्य पक्ष

जब कोई देश, समाज या संस्कृति त्रासदी के दौर से गुज़रता है तो उसमें सबसे ज़्यादा लहूलुहान उसकी भाषा होती है। किसी भी त्रासदी का असर भाषा पर इसलिए भी ज़्यादा होता है क्योंकि भाषा संस्कृति की सबसे नाज़ुक इकाई है। पिछले कुछ दशकों में राजनीतिक और सामाजिक बदसलूकी ने भाषा की संभावनाओं को संकुचित करने में कोई कसर नहीं छोड़ा है। हमारे इर्द-गिर्द बाज़ार की भाषा ने जो शोर उत्पन्न कर दिया है उसमें शब्द के मायने कहीं खो गये हैं। कुँवर जी अपनी कविताओं के माध्यम से शब्द की गरिमा और उसके अर्थ-सन्दर्भों को पुनःस्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। शब्दों और अर्थों के अंतःसंबंधों को समझे बिना कुँवर नारायण की कविताओं का ठीक-ठीक मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। आज जब साहित्य और कलाओं के लिए जगह सिमटती जा रही है इस दौर में भी कुँवर नारायण की कविताएँ इस बात की पुख्तगी का प्रमाण हैं कि जबतक मनुष्य और भाषा का संबंध बरकरार रहेगा; कविता ज़िंदा रहेगी। शब्दों की तरफ़ से दुनिया को देखना कवि के सरोकारों का पता देती है-

"कभी कभी शब्दों की तरफ़ से भी

दुनिया को देखता हूँ।

किसी भी शब्द को

एक आतशी शीशे की तरह

जब भी घुमाता हूँ आदमी, चीज़ों या सितारों की ओर

मुझे उसके पीछे

एक अर्थ दिखाई देता

जो उस शब्द से कहीं बड़ा होता है।"[1]

शब्द को आतशी शीशे की तरह घुमाना और कुछ यूँ घुमाना कि शब्द से बड़ा अर्थ दिखायी देने लग जाए; यह एक कवि के रूप में कुँवर नारायण की सफलता है। किसी की भाषा का जो प्रयोग हम दैनिक जीवन में करते हैं कविता में उससे भिन्न रूप में प्रयोग होता है। शब्द का सामान्य अर्थ वह होता है जिसका प्रयोग हम आम बोलचाल में करते हैं। लेकिन जब उन्हीं शब्दों का प्रयोग किसी ख़ास जीवन-अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए करना हो तो भाषा को अलग रूप में इस्तेमाल करना पड़ता है। अभिव्यक्ति मनुष्य की आवश्यकता भी है और अनिवार्यता भी। परन्तु विभिन्न क्षेत्रों में अभिव्यक्ति के लिए भाषा का जो प्रयोग किया जाता है वह एक-सा नहीं होता। विज्ञापन की भाषा, साहित्य की भाषा नहीं हो सकती। इस संदर्भ में कुँवर नारायण लिखते हैं कि "कविता में भाषा का उसी तरह काया-परिवर्तन(Metamorphosis) होता है जिस तरह दूसरी कलाओं में उन माध्यमों का जिन्हें वे कलाएँ इस्तेमाल करती हैं-किसी ख़ास इरादे से नहीं बल्कि उस बे-इरादे से जिसे हम कला रचना की बुनियादी शर्त कहेंगे। भाषा का इस्तेमाल 'कुछ बताने' की नीयत से उतना नहीं जितना 'सुंदर कुछ' रचने की नीयत से होता है। इस संदर्भ में भाषा का इस्तेमाल भाषा के 'ज़रूरत वाले' या 'व्यावहारिक' इस्तेमाल से ज़रूर भिन्न होगा-वह functional की अपेक्षा non-functional अधिक होगा।"[2]

कुँवर जी की कविताओं में भाषा के इस भिन्न तरह के इस्तेमाल को हम देख सकते हैं। इस उपअध्याय के अंतर्गत कुँवर नारायण की कविताओं में प्रयुक्त अलंकार, अप्रस्तुत विधान, संवाद आदि का विवेचन किया गया है। कुँवर नारायण की कविताएँ भाषा की उस समवेत शक्ति का अहसास कराती हैं जो एकरुखी होने के बजाय विविध आयामी हैं। सहज भाषा-शैली में होने के बावजूद ये कविताएँ इतनी सरल नहीं हैं कि ये एक आयामी हों। ध्यातव्य है कि कविता का सौन्दर्य सिर्फ़ 'कथ्य' में नहीं होता बल्कि 'रूप' और 'कथ्य' दोनों मिलकर कविता में सौन्दर्य की

अनुभूति कराते हैं। किसी कविता का अनुवाद करते समय सबसे बड़ी कठिनाई यही होती है कि 'कथ्य' का तो अनुवाद किया जा सकता है परन्तु कविता जिस संवेदनशीलता से जीवन-अनुभव को व्यक्त करती है उसे सम्पूर्णता में अनूदित करना मुश्किल है। कुँवर जी की कविताओं में प्रयुक्त शब्द अपने विविध आयामी स्वरूप की वजह से पाठक को विशिष्ट अनुभूति का अहसास कराते हैं। कविता में 'शब्द' की भूमिका स्पष्ट करते हुए कुँवर नारायण लिखते हैं-"एक शब्द-या शब्द-विन्यास-जितने ही गहरे अनुभवों का स्पर्श करेगा उसका अर्थ ही नहीं उसका सौन्दर्यबोध भी उतना ही विशिष्ट और व्यापक होगा।"[3]

कुँवर नारायण की कविताओं के अभिव्यक्ति-पक्ष को निम्न बिन्दुओं में व्यंजित किया जा सकता है-

- **शब्द भंडार**

'शब्द' कुँवर नारायण की कविता की बुनियादी इकाई है। वे शब्द को बरतने के मामले में अपने अग्रज अज्ञेय से बिलकुल भिन्न हैं। अज्ञेय अपनी कविताओं में पुराने उपमानों के प्रयोग से बचते रहे हैं। कुँवर नारायणकविता में शब्द और उपमान के प्रयोग के संदर्भ में प्राचीन या नवीन जैसी कोई सीमा नहीं बनाते हैं। उनकी कविताओं में हमें संस्कृत के शब्द भी नज़र आते हैं और उर्दू के भी। वे शब्द के साथ इतिहास से लेकर मिथक तक उन्मुक्त विचरण करते हैं। इस पूरी यात्रा में वे शब्दों के प्रति पूर्णतः सजग और संवेदनशील रहे हैं। उनकी कविताएँ इस बात का प्रमाण हैं कि कोई भी भाषा एक स्तरीय नहीं होती। हम देख सकते हैं कि कुँवर जी की कविताओं में शब्द कैसे जीवन की भिन्न प्रकार की व्यंजना को अभिव्यक्ति देते हैं। एक जीवन वह है जो हम रोज़ जीते हैं, जिसके प्रायः सभी सरोकार भौतिक वस्तुओं से जुड़ेहोते हैं। पर जीवन का एक पक्ष वह भी है जो अमूर्त है, जिसकी भौतिक उपस्थिति नहीं है पर जीवन में उसकी अनिवार्यता से इंकार नहीं किया जा सकता।कुँवर नारायण अपनी कविताओं में भाषा-प्रयोग के द्वारा जीवन के इस

दूसरे पक्ष की अभिव्यक्ति को संभव बनाते हैं। शब्दों का इस रूप में प्रयोग हमें यह आश्वस्ति देता है कि भविष्य में हिंदी केवल भौतिक वस्तुओं और उसके उपभोग की भाषा बनकर नहीं रहने वाली यह मनुष्य के आत्मिक आवाज़ की भाषा बन उसके जीवन-विवेक को जागृत रखेगी। अपनी कविताओं में शब्द-प्रयोग की स्वच्छंदता को लेकर कुँवर जी ने लिखा है- "वैसे अपने लिए मैंने कविता में किसी ख़ास तरह की भाषा या शब्दों की सीमा कभी नहीं बनाई। हिंदी के सम्पूर्ण नए-पुराने भाषायी क्षेत्र को प्रमाणिक मानकर कविता को खुली छूट दी है-न उर्दू से परहेज रखा न संस्कृत से, न केवल बोलचाल की भाषा तक सीमित रहा और न ही पारम्परिक काव्य भाषा तक।"[4] कुँवर नारायण की कविताओं में तद्भव, तत्सम एवं उर्दू शब्दों का जो सुंदर प्रयोग दिखता है उसने कविता को प्रभावी बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कुँवर नारायण की कई कविताओं में उर्दू भाषा की शब्दावलियों का सुंदर और प्रभावी प्रयोग देखने को मिलता है। इतिहास और मिथक से संबंधित कई कविताओं में उर्दू-शब्दों के प्रयोग द्वारा कुँवर जी ने अपनी काव्य-चेतना को अभिव्यक्त किया है। 'लखनऊ' शीर्षक से उनकी एक कविता 'अपने सामने' काव्य-संग्रह में संग्रहित है। इस कविता में प्रयुक्त उर्दू शब्दों को उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है-

"**बारीक़** मलमल पर कढ़ी हुई बारीक़ियों की तरह

इस शहर की **कमज़ोरनफ़ासत**,

नवाबी **ज़माने** की जनानी **अदाओं** में

किसी मनचले को रिझाने के लिए

क़व्वालियाँ गाती हुई **नज़ाकत** :

किसी **मरीज़** की तरह नयी **ज़िन्दगी** के लिए तरसता,

सरशार और **मजाज़** का लखनऊ,

किसी **शौक़ीन** और हाय किसी **बेनियाज़** का लखनऊ"[5]

उपर्युक्त पंक्तियों में उर्दू शब्दों के प्रयोग को देखा जा सकता है।

ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण की कविताओं का आधार चाहे इतिहास हो या मिथक, उसके केंद्र में हमारा आज होता है। उन्होंने भारतीय संस्कृति पर विदेशी प्रभावों को कभी इस रूप में नहीं लिया है कि वे आरोपित हैं और उसे अलगाकर किसी विशुद्ध भारतीय संस्कृति की ओर बढ़ा जाए। कुँवर नारायण इन प्रभावों को 'आरोपित' नहीं मानते बल्कि 'म्यूटेशनल' मानते हैं। उनका मानना है एक-दूसरे के आदान प्रदान से दोनों संस्कृतियाँ समृद्ध हुई हैं। उर्दू भाषा के शब्दों का प्रयोग कुँवर नारायण की उन कविताओं में भी देखने को मिलता है जिनमें पौराणिक कथाओं का आधार लिया गया है। 'आत्मजयी' जैसा खंडकाव्य इस भाषिक प्रयोग का गवाह है। विनोद भारद्वाज से बातचीत के क्रम में कुँवर नारायण कहते हैं-"'आत्मजयी' में मैंने उर्दू से लेकर वैदिक तक, कई प्रकार के शब्दों और भाषा प्रकारों को लिया है क्योंकि मैं यह नहीं मानकर चला हूँ कि 'आत्मजयी' में उपनिषद्कालीन भाषा ही हो क्योंकि वह एक उपनिषद्कालीन प्रसंग पर आधारित है। अगर हमारा आज का सम्पूर्ण भाषा-बोध या भाषा-संस्कार वैदिक भाषा से लेकर उर्दू तक से जुड़ा है तो उसके इस अस्तित्व को प्रमाणिक माना जाना चाहिए।"[6]

कुँवर नारायण की कविताओं में प्रयुक्त कई शब्द ऐसे हैं जिन्हें संस्कृत से बिना कोई रूप बदले ले लिया गया है। 'वाजश्रवा के बहाने' कुँवर नारायण का एक प्रसिद्ध खंडकाव्य है। इस खंडकाव्य को पढ़ते हुए ऋग्वेद की सूक्तियाँ हमारे कानों में गूँजती हैं। इस काव्य-कृति की कई पँक्तियों के आधार के रूप में भी कुँवर जी ने ऋग्वेद की सूक्तियों को उद्धृत किया है। भूमिका में

भी कवि ने स्पष्ट रूप से इस बात का उल्लेख किया है कि "कृति में ऋग्वेद की कुछ सूक्तियों-उनकी गूँजों और अनुगूँजों को-विशेषतः 'कः', 'हिरण्यगर्भ', 'पुरुष', 'नासदीय', 'सृष्टि', 'उषस', आदि की स्पष्ट-अस्पष्ट ध्वनियों को आसानी से पहचाना जा सकेगा।"[7] इस खंडकाव्य की कई पंक्तियों में श्लोक से जीवन की संगति को देखा जा सकता है।

कुँवर जी की कविताओं में तद्भव और देशज शब्दों का भी प्रयोग पर्याप्त मात्रा में देखने को मिलता है। इसके अलावा अपनी कुछ कविताओं में अंग्रेज़ी शब्दों का भी सटीक प्रयोग उन्होंने किया है। कुँवर नारायण अपनी कविताओं में शब्द का प्रयोग कुछ इस तरह करते हैं कि उसके अर्थ और संदर्भ में विस्तार हो सके। शब्द के विषय में कुँवर जी का मत दृष्टव्य है-"शब्द मुझे सम्प्रेषण की निर्जीव इकाइयाँ मात्र नहीं लगते। वे मुझे जैविक लगते हैं-चंचल, स्फूर्त, अन्दर से जाग्रत। उनके द्वारा तो बातचीत संभव है ही, पर उनसे भी बातचीत संभव है। मेरे लिए कविता अक्सर इस दूसरे तरह की बातचीत से भी निकलती है। शब्द वही रहते हैं लेकिन वाणिज्य में, अनुसन्धान में, विज्ञान में, प्रार्थना में, सान्त्वना में, दिनचर्या में उनकी अर्थ-छवियाँ बदल जातीं क्योंकि उनके संदर्भ बदल जाते।...कविता हमें शब्दों के सामर्थ्य की ज़्यादा बड़ी दुनिया में ले जाती है।"[8]

➢ संवाद

संवाद मनुष्य की अनिवार्य ज़रूरतों में शामिल है। जबसे मनुष्य इस धरती पर अस्तित्व में आया उसने संवाद की ज़रूरत को महसूस किया है। भाषा-प्रयोग की बुनियाद में भी यह ज़रूरत ही है। संवाद के विषय में निर्मल वर्मा लिखते हैं-"संवाद आत्मा की ज़रूरत है। मैं उसे एक तरह की भूख मानता हूँ, जिसे मनुष्य ने उस 'आदि क्षण' में महसूस किया होगा जब उसे लगा होगा कि वह मनुष्य है, अपने में अकेला है, लेकिन दूसरे के साथ है। दूसरे भी अकेले हैं, लेकिन उसके साथ हैं।"[9]

संवाद का सामान्य अर्थ है बातचीत। साहित्य की कोई भी विधा हो वह भाषा से संबंधित होने की वजह से संवाद से भी जुड़ी होती है। कुँवर नारायण की कविताओं में संवाद का सधा हुआ प्रयोग देखने को मिलता है। कई कविताओं में कवि स्वयं से भी संवाद करते हैं। संवाद ने कुँवर जी की कविताओं को रोचकता तथा जीवंतता से युक्त बनाया है। संवादों के माध्यम से कवि हमारी चिंतन की प्रक्रिया को झकझोरते हैं। उनकी ऐतिहासिक कविताओं में भी इस संवाद-धर्मिता को देखा जा सकता है। 'कुमारजीव' खंडकाव्य के शुरुआती हिस्से में जीवा और कुमारायन के संवाद इसके श्रेष्ठ उदाहरण हैं। वहीं अगर मिथकीय रचनाओं पर नज़र डालें तो 'वाजश्रवा के बहाने' में जिस चुटीले अंदाज़ में कवि संवाद का प्रयोग करते हैं वह पाठक को चेतना के स्तर पर आंदोलित करता है।

"किसी महात्मा से पूछा था एक बार किसी ने-

"कितना समकालीन है तुम्हारा सत्य?

कितने आधुनिक हैं तुम्हारे हथियार?

कितना तर्कसंगत है तुम्हारा सन्देश?

क्या तुम्हारे सिपाही लड़ सकते हैं

एक महायुद्ध?"

कोई उत्तर न देकर महात्मा ने पूछा था उससे-

"कितना विकसित है तुम्हारा जीवन-विवेक?

कितना आधुनिक है तुम्हारा युद्ध?

कितने प्रबुद्ध हैं तुम्हारे सैनिक?

क्या वे लड़ सकते हैं

स्वयं से एक आत्मिक युद्ध?"[10]

ऐसे कई जीवन्त संवादों को कुँवर नारायण की कविताओं में लक्षित किया जा सकता है। इन कविताओं में अगर कोई पात्र एकालाप करता नज़र आता है वहाँ प्रायः दूसरा पक्ष पाठक होता है जिससे कवि संवाद करना चाहते हैं। 'कुमारजीव' के प्रारंभिक हिस्से को पढ़ता हुआ पाठक बुद्ध और कुमारजीव के बीच के जुड़ाव को महसूस कर सकता है। दोनों के बीच की इस अदृश्य शृंखला को कवि ने बहुस्तरीय संवाद के द्वारा दिखलाया है। बुद्ध को याद करता हुआ कुमारजीव जब एकालाप करता है तो उसमें बुद्ध भी शामिल हैं और कुमारजीव का समय भी। कहीं-कहीं तो इस संवाद में कवि भी शामिल हो लेते हैं तो कहीं कवि 'फ्लैश-बैक' का कविता में प्रयोग करते हैं। कवि इस काव्य-कृति का प्रारंभ ही यह कहते हुए करते हैं-

"मैं तथागत के साथ हज़ारों साल लम्बी

एक महायात्रा पर निकला हूँ

हमें सदियाँ पार करनी हैं साथ-साथ

हमारे रास्ते में पड़ेंगे

न जाने कितने संसार और कितने वीरान"[11]

➢ **अलंकार**

'अलंकार' शब्द का निर्माण 'अलम्' और 'कार' शब्दों के योग से हुआ है जिसका अर्थ है- शोभाकारक तत्व। प्रायः 'अलंकार' शब्द की व्युत्पत्ति दो तरह से की जाती है-

1. अलंक्रियतेSनेन इति अलंकारः (जिसके द्वारा अलंकृत किया जाता है)।
2. अलंकरोति इति अलंकारः (जो अलंकृत करता है)[12]

अलंकार-सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक आचार्य भामह हैं। उनके पश्चात दण्डी और उद्भट जैसे विद्वानों ने अलंकार को विवेचित किया। अपनी पुस्तक 'काव्यादर्श' में दण्डी ने 'अलंकार' को विस्तृत रूप से विवेचित किया है। अलंकार के प्रयोग से कविता की संरचना में चमत्कार उत्पन्न होता है। यह कविता के सौन्दर्य को निखारने का काम करता है। आचार्य शुक्ल ने अलंकार को परिभाषित करते हुए लिखा है-"भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति ही अलंकार है।"[13]

कुँवर नारायण की कविताओं के शिल्प-पक्ष के अंतर्गत अलंकार का महत्वपूर्ण स्थान है। इन कविताओं को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि यहाँ कविता में अलंकार के प्रयोग में किसी भी क़िस्म की हड़बड़ी नहीं है। इसलिए कुँवर नारायण की अलंकार-योजना में कृत्रिमता नहीं है। यहाँ अलंकार कविता में कुछ इस तरह शामिल है कि उसे अलगाया नहीं जा सकता। कुँवर जी ने अपनी कविताओं में उपमा,अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा जैसे अलंकारों का प्रयोग किया है।

i. उपमा अलंकार

उपमा अलंकार को आचार्यों ने भिन्न-भिन्न तरह से परिभाषित किया है। आचार्य भामह कहते हैं-

"विरुद्धेनोपमानेन देशकालक्रियादिभिः।

उपमेयस्य यत्साम्यं गुणलेशेन सोपमा।।" (काव्यालंकार 2/30)

अर्थात् "विरुद्ध अथवा भिन्न उपमान के साथ देश, काल तथा क्रियादि के द्वारा उपमेय का साम्य आदि गुणलेश से हो तो उपमा अलंकार है।"[14]

उपमा अलंकार में मुख्यतः चार तत्व शामिल होते हैं-

(क) उपमेय- जिसकी उपमा दी गयी हो।

(ख) उपमान- जिससे उपमा दी दी गयी हो।

(ग) साधारणधर्म- वह गुण जो उपमेय और उपमान दोनों में मौजूद हो। जिसके आधार पर दोनों में समता बतायी जाए।

(घ)वाचक शब्द- वह शब्द जिसके द्वारा उपमेय और उपमान में समानता बतायी जाए। जैसे- इव, सा, सी, से आदि

कुँवर नारायण अपनी कविताओं में जब उपमा अलंकार का प्रयोग करते हैं तो उसमें प्राचीन और नवीन दोनों उपमानों का प्रयोग इस तरह करते हैं कि वह अर्थ सन्दर्भों को विस्तार दे। अपनी कविताओं में उपमा अलंकार का उन्होंने सर्वाधिक प्रयोग किया है। कठोपनिषद् को आधार बनाकर जब कवि 'आत्मजयी' जैसी कृति रचते हैं तो इस उपमा अलंकार के द्वारा उपनिषद कालीन अनुभव को हमारे जीवन-अनुभव में शामिल करते नज़र आते हैं- "ये अबोध तड़पने।**बीमार गायों-सा जन-समूह**"[15]

उपर्युक्त पंक्ति में "बीमार गायों-सा" में उपमा अलंकार है। यहाँ कवि ने मूक जन-समूह की तुलना बीमार गायों से की है।

मनुष्य के व्यक्तित्व को शहरी जीवन की आपाधापी ने जिस बर्बरता से तहस-नहस किया है उसे कुँवर नारायण ने अपनी कविता में उपर्युक्त उपमानों द्वारा प्रभावी रूप से व्यक्त किया है। उपमानों का प्रयोग कुँवर नारायण अपनी काव्य-यात्रा के प्रारंभिक दिनों से ही करते रहे हैं।'अपने सामने' काव्य-संग्रह में एक कविता है-'लखनऊ'। इसमें कवि शहर की बद्तर होती स्थिति के विषय में लिखते हैं-

"अधमरे **बूढ़े-सा खाँसता हुआ लखनऊ**।"[16]

"किसी **मरीज़ की तरह** नयी ज़िन्दगी के लिए तरसता"[17]

यहाँ क्रमशः 'बूढ़े सा' तथा 'मरीज़ की तरह' में उपमा अलंकार है।

ii. रूपक अलंकार

आचार्य दण्डी रूपक को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि –

"उपमैव तिरोभूत भेदारूपकमुच्यते"[18]

सामान्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब उपमेय और उपमान में कोई भेद न हो तो वहाँ रूपक अलंकार होता है। कुँवर नारायण की कई कविताओं में रूपक अलंकार का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है। 'चक्रव्यूह' कुँवर जी का पहला काव्य-संग्रह है, इस संग्रह की पहली कविता 'लिपटी परछाइयाँ' में कवि ने वसंत को विद्या का और फूल को अक्षर का रूपक दिया है-

"वसन्त-विद्या के सुमन-अक्षर बिखरा गई"[19]

कुँवर नारायण की कविताओं में प्रयुक्त रूपक नयी कविता के चरमोत्कर्ष को प्रस्तुत करता है।

'इन दिनों' काव्य-संग्रह में संग्रहित कविता 'शहर और आदमी' की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं-

"अपने खूँख़्वार जबड़ों में

दबोचकर आदमी को

उस पर बैठ गया है

एक दैत्य-शहर"[20]

उपर्युक्त पंक्तियों में 'दैत्य-शहर' में रूपक अलंकार का प्रयोग देखने को मिलता है।

iii. उत्प्रेक्षा अलंकार

उपमेय में उपमान की संभावना या कल्पना ही उत्प्रेक्षा है। कुँवर नारायण अपनी कई कविताओं में उपमेय में उपमान की सम्भावना करते नज़र आते हैं। कुँवर जी के काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार के कई उदाहरण देखने को मिलते हैं। उदाहरण दृष्टव्य है-

"मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया,

पिघलती आग-सी सन्ध्या,

बदन पर एक फूटा कवच,

सारी देह क्षत-विक्षत,

धरती-खून में ज्यों सनी लथपथ लाश,

सिर पर गिद्ध-सा मँडला रहा आकाश...।"[21]

यहाँ 'खून में सनी धरती' के लिए 'लथपथ लाश' की संभावना की गयी है। अतः उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसके अलावा उपर्युक्त पँक्तियों में पिघलती आग और सन्ध्या में तथा गिद्ध और आकाश में समता बतायी गयी है इसलिए यहाँ उपमा अलंकार है।

'चक्रव्यूह' के प्रकाशन से भी पहले अज्ञेय के संपादन में प्रकाशित 'तीसरा सप्तक' में इनकी कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं। इस संग्रह में संकलित एक महत्वपूर्ण कविता है 'भूतहा घर'। सालों से खाली मकान की वीरानी को चित्रित करते हुए कवि लिखते हैं-

"बिल्कुल वीरान,

मानो हो **श्मशान**,

बरसों से ख़ाली है

यह **ख़ाली मकान**"[22]

यहाँ 'ख़ाली मकान' की वीरानी के लिए 'श्मशान' की संभावना की गयी है। अतः यहाँ उत्प्रेक्षा अलंकार है।

iv. मानवीकरण अलंकार

प्राकृतिक दृश्यों, निर्जीव पदार्थों तथा अमूर्त विषयों पर मनुष्य की अनुभूतियों को आरोपित किया जाता है तो वहाँ मानवीकरण अलंकार होता है। इससे अमूर्त चिंतन भी मूर्त हो जाता है और जड़ पदार्थ की अभिव्यक्ति जीवित पदार्थ के रूप में होती है। कुँवर नारायण की

कविताओं में अमूर्त चिंतन को साकार करने का प्रयास दिखता है। कवि की दृष्टि सिर्फ़ भौतिक जगत की उन वस्तुओं तक ही नहीं रही है जो मूर्त रूप में विद्यमान हैं बल्कि उनकी कविताओं में अमूर्त चिंतन भी अनिवार्य रूप में अभिव्यक्त हुआ है। मानवीकरण अलंकार का कुँवर नारायण ने बहुतायत प्रयोग किया है। उदाहरण दृष्टव्य हैं-

"ओस-नहाई रात

गीली सकुचाती आशंक,

अपने अंग पर शशि-ज्योति की सन्दिग्ध चादर डाल,

देखो

आ रही है व्योमगंगा से निकल

इस ओर"[23]

"करोड़ों आँख वाली रात पर,

दानव सरीखी राज पर,

ताजा सवेरा :

पूर्व में आलोक...

पहला पाँव...

थोड़ा काँप कर :

रात चौंकी इस तरह

ज्यों छिप रही हो

कहीं कोई पुण्य-नाशक पाप कर:"[24]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रकृति पर मानव के आरोपण को देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम पाते हैं कि कुँवर नारायण जब अपनी कविताओं में किसी अलंकार का प्रयोग करते हैंतो वह कथ्य को विस्तार दे रहा होता है। यहाँ अलंकार सिर्फ़ साज-सज्जा के लिए नहीं है बल्कि कविता से अभिन्न रूप में जुड़ा हुआ है। यद्यपि कुँवर नारायण अलंकरण को काव्य का बाहरी आभूषण ही मानते हैं तथापि इनकी कविताओं में 'अलंकार' का सुंदर प्रयोग देखने को मिलता है। कविता से अलंकार के संबंध के विषय में कुँवर जी लिखते हैं- "अलंकरण कविता का बाहरी आभूषण है, उसका अनिवार्य अंग नहीं। गहनों से लाद देने मात्र से भद्दी कविता सुन्दर नहीं हो जाती और एक सुन्दर कविता बिना आभूषणों के भी सुन्दर होगी।...कविता अपने प्राकृतिक रूप में सुन्दरतम है। थोड़ा शृंगार तो उत्तम है : भारी शृंगार का भार उसकी जान ले सकता है।"[25]

- **व्यंग्यात्मकता**

जब कोई कवि लोभ और डर से परे जाकर कविता रचता है तो वह अपनी सामाजिक और नैतिक ज़िम्मेदारी को अधिक ईमानदारी से निभा पाता है। कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में व्यवस्था, सत्ता, बाज़ार, भूमंडलीकरण सबकी विसंगतियों पर व्यंग्य किया है। ऐसा कर पाने में वे सफ़ल इसलिए भी रहे हैं क्योंकि उन्होंने कभी साहित्य लेखन के बदले किसी पद या राजनीतिक लाभ की अपेक्षा नहीं की। उनकी एक कविता का शीर्षक है-'शान्ति वार्ता'। यह

कविता 'इन दिनों' काव्य-संग्रह में संग्रहित है। इस कविता में कवि ने आज के मनुष्य की उस मनोवृत्ति पर कटाक्ष किया है जिससे युद्ध की मानसिकता को बल मिलता है-

"पुराणम् कुरानम्/सभी को प्रणामम्

न साखी न सब्दम्/ महायुद्ध ठानम्

ईसा न इस्लाम/ मार्क्सम न बुद्धम्

न मजहब न धम्मम्/ परम सत्य युद्धम्

XXXXXXXXX

न पश्चिम न पूर्वम्/ नकारम् भविष्यम्

विस्फोट सफलम्/ निराकार विश्वम्।"[26]

हम सब एक ऐसे समय के साक्षी हैं जब पुराण, कुरान, धर्म, विचारधारा सबके वास्तविक मर्म को भुला कर युद्ध का आधार निर्मित करने के काम में लिया जाता है। ध्यातव्य है कि कुँवर नारायण कभी भी किसी विचारधारा के कट्टर अनुयायी नहीं रहे। एक कवि के रूप में वे विचारधारा से प्रतिबद्धता के बदले जीवन से वाबस्तगी को ज़्यादा महत्त्व देते हैं। इसलिए युगसत्य पर वे इस तरह का व्यंग्य रच पाने में सफल हुए हैं। वर्तमान समय में मनुष्य ने अपनी चेतना को गिरवी रखकर जिस दुर्गति को आत्मसात कर लिया है उसपर कवि व्यंग्य करते हुए लिखते हैं-

"तो फिर आप ही बताइए

अगर मेढक नहीं हूँ

तो कैसे रह रहा हूँ कुएँ में?

अगर चूहा नहीं हूँ

तो यह बिल किसका है?

अगर कुत्ते से बेहतर हूँ

तो यह दुम किसकी हिल रही?"[27]

कुँवर नारायण मनुष्य को उसकी पूरी गरिमा के साथ व्यवहार करते हुए देखना चाहते हैं। जब आज के मनुष्य की जीवन-शैली पर कवि की निग़ाह पड़ती है तो निराशा स्वाभाविक है। ऐसे में भाषा के पूरे सामर्थ्य के साथ कुँवर जी आज के मनुष्य को अपने व्यंग्य से झकझोरते हैं।

➢ फैन्टेसी

"'फैन्टेसी' शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द 'फैन्टेसिया' से हुई है, जिसका अर्थ है अवास्तव या अमूर्त को दृश्य बनाना।"[28] हालाँकि साहित्य या काव्य में यह एक टेक्नीक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है परन्तु 'फैन्टेसी' मूलतः मनोविज्ञान का शब्द है। मनोविज्ञान के क्षेत्र में 'फैन्टेसी' का अध्ययन करने वाले विद्वानों में सिगमंड फ्रायड, अल्फ्रेड एडलर और कार्ल युंग का नाम प्रमुख है। हिंदी में मुक्तिबोध की कविताओं में फैन्टेसी के बहुतायत प्रयोग देखने को मिलते हैं। इनकी कविताओं में फैन्टेसी के माध्यम से सामूहिक अवचेतन को प्रकाशित किया गया है। मुक्तिबोध की प्रसिद्ध यथार्थवादी कविता 'ब्रह्मराक्षस' तथा 'अंधेरे में' में सुंदर फैन्टेसी विधान देखने को मिलता है।

कुँवर नारायण ने रचना की प्रक्रिया में फैन्टेसी को विशेष महत्त्व दिया है। उनकी कई कविताओं में अमूर्त को दृश्य बनाकर प्रस्तुत किया गया है। कुँवर जी यथार्थ को इस तरह से

प्रस्तुत करते हैं कि पाठक के समक्ष विस्मय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। वह विचारों में डूबने लगता है।कुँवर जी की एक कविता का शीर्षक है 'ऊँचा उठा सिर'। इस कविता में कवि ने जन सामान्य की जिजीविषा और हिम्मत को केंद्र में रखकर 'फैन्टेसी' के माध्यम से उसे अभिव्यक्त किया है-

"उसकी लटकी हुई छाती, धँसा हुआ पेट, झुके हुए कन्धे, वह

कौन है हमेशा जिसकी हिम्मत नहीं, केवल घुटने तोड़े जा सके?"[29]

कुँवर नारायण की फैन्टेसी में अति नाटकीयता नहीं है। वे फैन्टेसी द्वारा संवेदनशील चित्रों की शृंखला रचते हैं। उनकी कविताओं में 'यथार्थ' की सूक्ष्म अभिव्यंजना देखने को मिलती है। इन कविताओं में 'यथार्थ' और 'फैन्टेसी' से संबंधित विचारों का बिल्कुल सही समन्वय है। कुँवर जी 'फैन्टेसी' द्वारा भाषा को समृद्ध करते हैं। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं-

"सारी परिस्थिति की एक और भी सूरत थी-

शायद उस आदमी को मदद की ज़रुरत थी।"[30]

"विश्वास रक्खो।

मैं तुम्हारे साथ हूँ।

उस तम-विवश उम्मीद में

जो रोशनी को प्यार करती है।

XXXXXXXXXX

अपनी दृष्टि के विस्तार में हम साथ हैं :

विश्वास रक्खो...”[31]

कुँवर नारायण ने अपनी कविताओं में भाषा को जिस तरह बरता है वह भाषा के सामान्य प्रयोग से सर्वथा भिन्न है। वे भाषा और शब्दों के प्रति अपनी अनुभूतियों को किसी तरह के बंधन में नहीं रखते हैं यही कारण है कि उनकी कविता भाषा के सामर्थ्य को विस्तार देती है। कोई भी शब्द इनकी कविताओं में इस रूप में प्रयुक्त हुआ है कि जब उसे कविता के साथ पढ़ा जाए तो सिर्फ़ अर्थ भर ध्वनित होकर न रह जाए बल्कि जिन अनुभव-यात्राओं से होता हुआ वह शब्द वर्तमान अर्थ-सन्दर्भों तक पहुँचा है वह भी व्यक्त हो। कुँवर नारायण जीवन की हर छोटी-बड़ी घटना को कविता की भाषा में देखने का यत्न करते हैं। न वे छंद और तुक की अनिवार्यता पर बल देते हैं न अलंकार को सर्वेसर्वा मानते हैं। उनकी दृष्टि में तो “सुंदर शब्द-रचना और मर्मस्पर्शी अर्थ वैभव ही काव्य का असली गुण”[32] है।

संदर्भ सूची:

1. कुँवर नारायण, कोई दूसरा नहीं, पृष्ठ-26
2. कुँवर नारायण, आज और आज से पहले, पृष्ठ-87
3. सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-28
4. सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-30
5. कुँवर नारायण, अपने सामने पृष्ठ-55
6. सं. विनोद भारद्वाज, मेरे साक्षात्कार, पृष्ठ-18
7. कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-9
8. सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-57-58
9. निर्मल वर्मा, शताब्दी के ढलते वर्षों में, पृष्ठ-47
10. कुँवर नारायण, वाजश्रवा के बहाने, पृष्ठ-115
11. कुँवर नारायण, कुमारजीव, पृष्ठ-25
12. डॉ. सत्यदेव चौधरी, भारतीय काव्यशास्त्र, पृष्ठ-330
13. रामचन्द्र शुक्ल, चिन्तामणि भाग-2, पृष्ठ-111
14. डॉ. योगेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ. संजय कुमार सिंह, रस छन्द अलंकार, पृष्ठ-32
15. कुँवर नारायण, आत्मजयी, पृष्ठ-24
16. कुँवर नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-54
17. कुँवर, नारायण, अपने सामने, पृष्ठ-55
18. डॉ. योगेन्द्रप्रताप सिंह, डॉ. संजय कुमार सिंह, रस छन्द अलंकार, पृष्ठ-33
19. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-15
20. कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-21
21. कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, 135

22.सं. अज्ञेय, तीसरा सप्तक, पृष्ठ-169

23.कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-21

24.कुँवर नारायण, चक्रव्यूह, पृष्ठ-121

25.कुँवर नारायण, शब्द और देशकाल, पृष्ठ-82

26.कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-111-112

27.कुँवर नारायण, इन दिनों, पृष्ठ-98

28.डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, पृष्ठ-245

29.कुँवर नारायण, अपने सामने पृष्ठ-32

30.कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, पृष्ठ-90

31.कुँवर नारायण, परिवेश : हम-तुम, पृष्ठ-84

32.सं. विनोद भारद्वाज, तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं, पृष्ठ-72